* श्री *

गौतमबुद्ध

हिन्दी-भाषा में एक अद्वितीय धार्मिक नाटक।

लेखक:-

कलियुग, संसारस्वप्न, विल्वमंगल, राधामाधव इत्यादि नाटकों के सम्पादक तथा ध्रुवचरित्र. परीक्षित, भक्तसुदामा, कृष्णलीला, इत्यादि नाटकों के

-: रचयिता :-

बाबू आनन्दप्रसाद कपूर।

प्रकाशक:-

शिवरामदास गुप्त,

उपन्यासबहार-आफिस; काशी, बनारस।

(All Rights Reserved)

प्रथम बार]

मूल्य १)

मामूली कागज ॥)

नाटकमाला संख्या—२०

Note—

This is to inform to all concerned that the writer has reserved himself all the rights of this drama and that any person or company found acting without the written permission of the writer, steps will be taken to restrain the infringement of his rights and to recover damages at the cost of the offending person or party.

इस नाटक का पूर्ण अधिकार लेखक ने अपने आधीन रखा है। इस हेतु बिना लेखक की आज्ञा के कोई भी इस नाटक को अथवा इसके किसी अंश को काम में लाने का ध्यान न लायें-लाभ की आशा में वृथा हानि न उठायें।

प्रकाशक—

बा० सूर्यनारायण जी द्वारा,

प्रस्तावना

संसार में किया गया कोई भी अच्छा काम बिफल नहीं जाता। यदि एक ओर त्याग है तो दूसरी ओर प्राप्ति भी है। भेद केवल इतनाही है कि किसी में आगे सुख है तो पीछे दुःख है और किसी में पहले दुःख है तो पीछे सुख है। इसमें थोड़ा सा सूक्ष्म भेद और है, कोई सुख थोड़ी देर का है और कोई सुख चिरस्थायी है। जब कि प्राणी मात्र का लक्ष्य सुख ही की ओर है तो जो सुख चिरस्थायी हो उसीको प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ होना चाहिए, जैसा कि सांख्यकार कहते हैं कि "तीनों तापों की अत्यन्त निवृति ही परम पुरुषार्थ है" 'अत्यन्त निवृत्ति' से तात्पर्य्य यह है कि वह ताप फिर न हों, उनका अंकुर नाश हो जाय। यह विषय गूढ़ है और वेदान्त और सांख्य दर्शन में इनका भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णन किया गया है। भारतवर्ष दर्शनप्रधान देश है, अनेकानेक परिवर्त्तन हो जाने पर भी यहाँ इन्हीं दर्शनों का शासन रहा है और आगे भी रहेगा, चाहे संसार में अन्यत्र कुछ भी होता हो उसका प्रभाव भारत की अंतरात्मा पर कभी नहीं पड़ने का। यह बात जहाँ तक इतिहास से पता लगता है, प्रमाणित हो रही है। सिद्धार्थ-गौतमबुद्ध भी इसी प्रभाव का एक जीता जागता नमूना था। वह भारत के असली खून, का रंगा हुआ साँचा था। इनकी शिक्षा और त्याग ने भारत पर जो विशेष प्रभाव डाला था वह इतिहासप्रेमी से छिपा नहीं है। यद्यपि जितना प्रचार इनके जीवनी का होना चाहिए उतना हुआ नहीं है। नाटक भी लोकचरित्र-गठन का एक अच्छा साधन है, अस्तु, 'सिद्धार्थकुमार' नाटक हिन्दी में रच कर श्रीयुत आनन्द प्रसाद कपूर' ने लोक-शिक्षा को लाभ पहुँचाया है, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। जब कि चारों ओर केवल मनोरंजन ही को लक्ष्य करके नाटक लिखे जा रहे हैं और लोकशिक्षा के आदर्श का,

किसी को ध्यान है ही नहीं। उस अवस्था में व्यवसायी नाटक कम्पनियों के मनोरंजक नाटकों के पृष्टपोषक ऐसे नाटकों को न अपनावें तो कोई आश्चर्य्य नहीं, पर याद रहे कि इस नाटक का विषय "भारतवर्ष की अंतरात्मा" का सच्चा चित्र है। ऊपर का उज्वल आवरण मात्र नहीं है "यह आत्मा है" पाँच भौतिक पिंड नहीं है। इस ओर भारतसंतान को आना ही होगा, पर हाँ समय लगेगा। क्योंकि यह जड़माया का पिंड नहीं है, इसे पाने के लिए त्याग की आवश्यकता है। जिस त्याग का, वैराग्य का गौतम की जीवनी में वर्णन है वह पिता के मोह के कारण, स्त्री के प्रेमाकर्षण के कारण, शिशु पुत्र के स्नेह के कारण और भी उज्वल हो उठा है। बुद्ध-देव का त्याग उनके अनन्त सुख का कारण हुआ; इसने उन्हें करुणा सागर बना दिया। बाणविद्ध हंस के प्रति करुणा का जो चित्र इस नाटक में खींचा गया है बड़ाही हृदय द्रावक है, यह हृदय में उस प्रेमोच्छ्वासका प्रवाह ले आता है जिस प्रवाह में सारे प्राणी बहें जा रहे हैं और जिस वेदना की तार से जीव मात्र बंधे हुये हैं। इस समवेदना का पूरा अनुभव एक विश्व प्रेमी जन ही कर सकता है। क्योंकि उसका त्याग, त्याग नहीं है वरन सामान्य गृहस्थी से वह विश्व का गृहस्थी हो जाता है उसकी उदार आत्मा गृहस्थी में बंधी रहना नहीं चाहती वह सारे विश्व के पिता के प्रति भक्ति, सारे विश्व के नारियों के प्रति प्रेम, सारे विश्व के बालक और शिशुओं के प्रति स्नेह और इतर पशू पक्षियों पर भी उसकी करुणा उमड़ आती है, तबही तो दुष्ट से दुष्टात्मा भी उसके प्रेम से आकर्षित होकर शुद्धात्मा हो जाती हैं। स्वार्थी, पाखंडी लोग भी एकदिन पश्चात्ताप करने लगते हैं। एक देवदत्तकयों, लक्षोहीं ऐसे दुष्टों को बुद्ध ने तारा होगा। माहत्मा बुद्ध भगवान बनावटी

त्याग को त्याग नहीं समझते थे और जिसका मन एक को छोड़ कर विश्वप्रेम में निमग्न नहीं हुआ है ऐसों को त्यागी बनाना भी उचित नहीं समझते थे। इसी लिए माधव को उन्होंने स्वयम संसारी बनाया, यह बात इस नाटक में विशेष महत्व रखती है। जिसका त्याग मन से नहीं हुआ ऊपरी वैराग्य का स्वाँग उसे और भी गिरा देगा, उसके उद्धार का मार्ग गृहस्थी ही है, यह बात आर्यग्रन्थों में सर्वत्र ही लिखी मिलती है। अस्तु, आदर्श त्यागी और संन्यासी गौतम बुद्ध-के द्वारा इस आर्य बचन को खूब अच्छी तरह इस नाटक में निबाहा गया है. और ऐसाही होना भी चाहिये था। यज्ञ में हिंसा भी एक बिश्व प्रेमी की दृष्टि से धर्मानुमोदित नहीं हो सकता और बिंबसार को बुद्ध-भगवान के उपदेशानुसार इसे त्याग कर उनका अनुयायी होना पड़ा — यह भगवान के अलौकिक प्रभाव का द्योतक है।

यद्यपि सिद्धार्थ कुमार या गौतम की महान जीवनी और उनके विस्तृत कार्य्य के मुकाबिले में यह नाटक एक दिग्दर्शन मात्र है, पर आशा है कि ग्रन्थकार भविष्य में बुद्ध-भगवान पर एक विस्तृत नाटक लिख कर हिन्दी जगत् को तृप्ति साधन करेंगे। इसमें परिश्रम और विशेष अध्यवसाय की जरूरत भी है कि बुद्ध-भगवान ऐसे महापुरुष की मुख्य मुख्य प्रभावोत्पादक जीवनी की घटनाओं का पूर्ण समावेश करके और साथ ही आधुनिक रंग मंच पर खेलने योग्य नाटक की रचना सहज काम नहीं है. पर इस ओर से हिन्दी जगत् ग्रन्थकार से विशेष आशा रखने का स्वत्व रखती है। क्योंकि आप केवल लेखक ही नहीं एक निपुण अभिनेता भी हैं। मेरा आशीर्वाद है कि यह अपने उद्देश में सुफल हों।

आशीर्वादक—

एक स्नेही।

* धन्यवाद *

सन् १९१६ में मैंने बम्बई में एक गुजराती नाटक – मण्डली का "गौतमबुद्ध" खेल देखा था। उसी समय से मेरी यह आंतरिक इच्छा हुई थी, कि इस खेल को मातृ--भाषा हिन्दी में भी लिखना चाहिये, परन्तु अपनी अयोग्यता पर ध्यान आतेही चुप कर जाना पड़ता था। इसी प्रकार लग भग ६ मास के बीत गया और मैं काशी लौट आया। यहाँ आने पर मेरी इच्छा इतनी प्रबल हो उठी कि मैंने अपनी अयोग्यता पर ध्यान न करके किसी न किसी प्रकार इसके दो अङ्क लिख डाले. और मेरे परम मित्र बाः शिवरामदास गुप्ता ने उन्हें छपा भी डाले। परन्तु दुर्भाग्यवश इसी बीच में कई झंझटो तथा दूसरे २ नाटकों के लिखने में लवलीन होने के कारण इसका तीसरा अङ्क पारसाल लिखा गया और अब यह छप कर पाठकों की सेवा में अर्पण किया जाता है। इतने दिनों के बीच में सांसारिक परिवर्त्तनों के साथ २ मनुष्य के विचारों में भी एक विराट परिवर्त्तन हो गया है और वही हाल मेरा भी है। परन्तु जो छप गया सो छप गया। इस हेतु आशा है कि यह नाटक एक प्रकार से नये रूप रंग में अपनी दूसरी आवृति में आवेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह महान विषय मेरे ऐसे एक तुच्छ तथा अल्पबुद्धि वाले द्वारा न लिखा जाकर यदि योग्य लेखनी से लिखा जाता तो यह कुछ और ही छटा लाता। परन्तु "गागर में सागर" भरने वाले एक हिन्दी सेवी कि धृष्टता क्षमा करते हुए यदि पाठकों ने इसे कुछ भी पसंद किया तो मैं अपना परिश्रम सुफल समझूँगा। इस नाटक के लिखने में मुझे श्रीयुत बिभाकर बी. एल. एल बी. कृत "सिद्धार्थ कुमार"–तथा श्रीयुत बाः-जगन्मोहन वर्म्मा कृत "बुद्धदेव" से बड़ी सहायता मिली है। इस हेतु मैं इन दानों सज्जनों का अत्यन्त ऋणी हूँ और उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

काशी–गढ़वासीटोला २६ जून, सन् १९२२ आनन्दप्रसाद कपूर

नाटक के पात्र ।

(पुरुष ।)

शुद्धोदन—कपिलवस्तुनरेश—सिद्धार्थ के पिता ।

अमात्य—शुद्धोधननरेश के मंत्री ।

असितऋषि—एक महायोगी।

पुरोहित—कपिलवस्तु का मुँह बोला गुरु ।

चन्न—सारथी—सिद्धार्थ का मित्र ।

सिद्धार्थकुमार—भगवान बुद्ध ।

राहुलकुमार—सिद्धार्थ का पुत्र ।

केशवचन्द—उदारचित्त—नगरसेठ—सरला का पिता ।

सरयूराम—एक सीधा किसान ।

देवदत्त—एक दंभी—शुद्धोदनराज्यवंशी ।

दण्डपाणि—देवदत्त नरेश—यशोधरा का पिता ।

हरिदास—वाममार्गी ।

रामचन्द्र-बुद्धि के शत्रु—एक ब्राह्मण ।

बुद्धि हज्जाम—भक्ति रसमें रंगी हुई शुद्ध आत्मा ।

माधव—कपिल वस्तु का एक उत्साही रत्न । सरला का प्रेमी—देवदत्त का शिकार ।

रामदास—हरिदास का पुत्र-

महानाम
भूदेव
कौडिन्य
} भगवान बुद्ध के मुख्य शिष्यगण—

यश—काशी नगर का एक धनाढ्य सेठ—

विंबिसार—मगध-नरेश !

रामचन्द्र के भक्त—भद्रवर्णीय राजकुमार-यश के मित्र—ब्राह्मण-श्रद्धानन्द, इत्यादि-२

(स्त्री)

गौतमी–सिद्धार्थ की माता–

यशोधरा– " अर्द्धाङ्गिनी–राहुलकी माता–

सरला–केशवचन्द्र की पुत्री–माधव की प्रेमिका–

प्रेमलता
पुष्पलता
मालती
शान्ति
} यशोधरा की सहेलियाँ।

वेश्यायें–दासी–बुद्ध की शिष्या–इत्यादि २—

स्थान–कपिलवस्तु–काशी–राजगृह–देवदह– आवस्तीवन–अनोमा नदी का किनारा इत्यादि २–

समय–लगभग २५०० वर्ष पूर्व–

पत्नीव्रत

एक धार्मिक पौराणिक नाटक।

पाठकगण! पतिव्रत की शिक्षा तो प्रायः सभी जानते हैं और सभी अपनी पत्नियों को देते हैं। लेकिन "पत्नीव्रत" की ओर किसी का भी लक्ष नहीं-किसी को इसकी कल्पना तक भी नहीं होती कि स्त्रियों को पतिव्रता बनाने में पत्नीव्रत, की कितनी आवश्यकता है। इसी बात को प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप दिखाने के उद्देश्य से ही इस नाटक की सृष्टि का गई है। राजकुमार ऋतुध्वज का पत्नीव्रत धारण-भगवान् शंकर द्वारा सती मदालसा का पुनर्जन्म शंकानिवारण, मदालसा का पुनः शिखण्डी से उत्पत्ति, दम्पतिप्रेमसम्मिलन आदि बड़ेही हृदयग्राही और मनोहर हैं, नाटक संसार में यह एक बिल्कुल ही नवीन और शिक्षाप्रद है। स्टेज में खेलने योग्य सीन सिनरियों तथा गायनों ने इसकी उपयोगिता और भी बढ़ादी है। बढ़िया कागज पर सुन्दर चित्रों तथा छपाई के मूल्य मामूली कागज ॥।) बढ़िया ॥।=)

पता—उपन्यास बहार आफिस, काशी, बनारस।

महात्माकबीर

यह नाटक आधुनिक समय के लिये अद्वितीय है। हिन्दू मुसल्मानों का प्रेमाकर्षण, राजशासन का अदृश्य घर्षण नेता के रूप में कबीर का लोमहर्षण व्यापार इस नाटक में दिखाई देता है। सती का सतीत्व बल, भक्तों का भक्तिसंबल, साधु के अटल भाव का दर्शन आदि करना होतो इस नाटक को पढ़िये इसमें महात्मा कबीर के जीवनउद्योग के साथ आधुनिक भावों का सुन्दर समावेश नजर आयेगा। इसीके साथ २ भारतोचित सभ्यता का सदुपदेश भी मिल जायगा। कबीर का देशसेवायोगधारण, मुसल्मानों द्वारा गौवध निवारण और भविष्य में भारत सुधार का प्रत्यक्ष कारण नजर आता है। एक व एक यह नाटक हिन्दु मुसल्मानों की प्रीति का सुदृढ़ बनाता है। बढ़िया सुन्दर कागज पर सुन्दर छपाई तथा चित्रों सहित का मूल्य केवल १)

पता—उपन्यास बहार आफिस, काशी, बनारस।

विश्वामित्र

सचित्र पौराणिक नाटक।

अपूर्व शक्तिशालि राजर्षी महात्मा विश्वामित्र की पुराय-कथा संसार में विख्यात है। जिनके तपोवल के आगे देवराज इन्द्र को भी हार माननी पड़ी थी। आज उन्हीं आत्मज्ञानी जितेन्द्रिय क्रोधी ऋषिराज के पवित्र चरित्र पर ही इस नाटक की रचना हुई है। एक तो यह कथा ही इतनी मनोरंजन है कि पढ़ते ही मुग्ध होजाना पड़ता है। दूसरे नाटक के रंग में रंगे जाने के कारण और सीन सीनरियों, कवितायें, गानों आदि के मनोहर संगम के होने से इसकी मनोहरता और भी अधिक बढ़गई है। इसके अतिरिक्त मेनका द्वारा "विश्वामित्र तपस्या भंग" नामक चित्र में सुन्दरी मेनका का हावभाव पूर्ण सुन्दर चित्र को देख आप लहा लोट हो जायंगे, और भी चित्रों से सुसज्जित मूल्य केवल ।।।)

पता—उपन्यास बहार आफिस, काशी बनारस।

सीतावनवास

भला सतियों के मान को बढ़ाने वाली, संसार में सतियों के उत्कट तथा पुण्यमय जीवन का अद्भुत दृष्टान्तस्वरूपा जगत् जननी महासती सीता का चरित्र चित्रण करना इस तुच्छ लेखनी से कब संभव है। किन्तु तौभी इस नाटक में कविने परिश्रम और दिमाग लड़ाकर कामलिया है। जिसकी सचाई पुस्तक देखने पर स्वयं विदित हो जायगी। सतीसीता की पतिप्रेमपरायणता, पति पर अटल अनुराग-संसार से विराग राजयोग के बदले वनवासिनी होने पर भी पतिपर निश्चलप्रेम-पराग आदि शिक्षाप्रद बातों का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। भक्तिरस, शृंगाररस तथा करुणारस का तो यह मानो खजाना है, सुन्दर चित्रों और छपाई की सफाई ने नाटक को और भी उत्तम बनाया है। मूल्य ॥)

पता—उपन्यास बहार आफिस, काशी बनारस।

उपहार

श्रीयुक्त _____

_____

श्री गणेशायनमः

सिद्धार्थकुमार ।

अथवा

गौतम बुद्ध ।

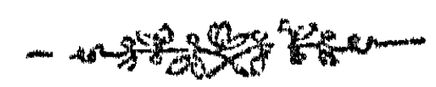

नमन ।

अजर अमर ओम् कार-अजर०—
अखिल सृष्टि सूत्रधार-
ज्ञान-प्रेम-सत्व-सार ॥ अजर०-
जीवन दीपक प्रकाश करत—पूर्ण होत आश ।
आनँद गृह २ विकाश—
भज मन तज सब विकार-अजर०—

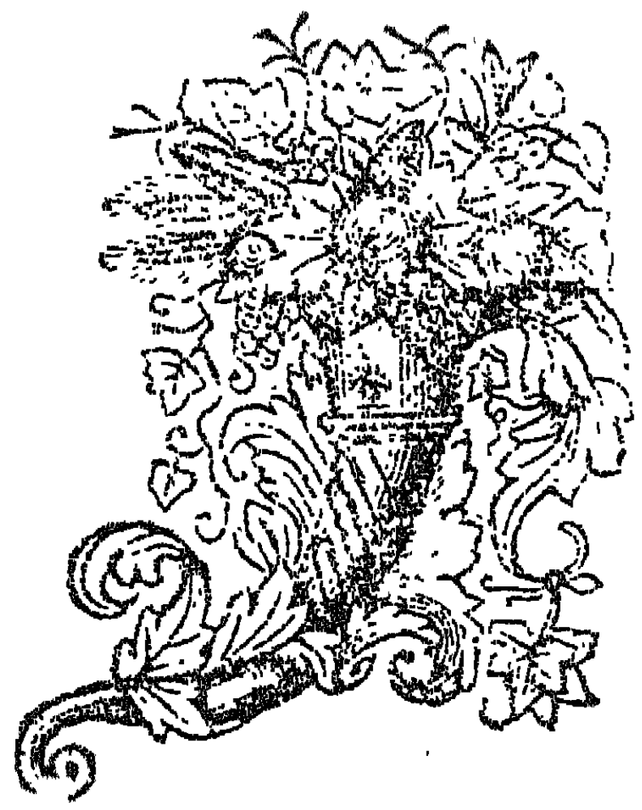

॥ श्रीः ॥

सिद्धार्थ कुमार

अथवा

गौतम बुद्ध

अंक पहिला । दृश्य पहिला

बाग ।

(कपिलवस्तु में राजकुमार सिद्धार्थ का प्रमोद-भवन)

[आज राजकुमार सिद्धार्थ का दिल बहलाने के लिए महाराज शुद्धोदन के आज्ञानुसार कपिलवस्तु तथा और २ नगरों की लावण्यमयी कुमारियों को, माणिक कञ्चन से भरे हुए स्वर्णपात्र कुमार सिद्धार्थ से भेंट कराने के हेतु उत्सव मनाया गया है। इस युक्ति से कदाचित् वैराग्य-प्रिय कुमार संसार-प्रिय हो जायँ, ऐसी महाराज शुद्धोदन की अभिलाषा है। प्रमोद-भवन का चित्ताकर्षक उद्यान-मण्डप आज अनेक सुन्दरियों के सौन्दर्य्य से जगमगा रहा है, उद्यान में सुगन्धमय फौव्वारे छुट रहे हैं, लताओं की कमानों पर रंग विरङ्गे सुगन्धित पुष्पों के गुच्छे लटकाये गये हैं। समस्त दृश्य सौन्दर्य्यमय, सुगन्धमय तथा आनन्दमय हो रहा है। बालाएं ऐसे सुखमय समय में मिल कर गा रही हैं।]

(गाना)

बालाएं—मोहत छबि आज शुभकाज राज।
धन धन भईं पुष्प की कलियाँ,
कोइल मगन गावत चढ़ डलियाँ,
आनँद चहुँ ओर दृष्टि पड़त, ऐसो साज। मोहत छबि०
मगन २ मन हो रहा निरखत शोभा बाग।
जलचर, थलचर, विहँगचर गावें राग सिहाग॥

मोहत छवि०

(गाना हो रहा है इतने में महाराज शुद्धोदन तथा प्रधान अमात्य बातें करते प्रवेश करते हैं, कुमारियाँ उन्हें देख कर शीघ्रता से भाग जाती हैं)

अमात्य-होगा, होगा, महाराज! आप का और समस्त कपिलवस्तु का मनोरथ अवश्य सफल होगा, दीन दयालु परमात्मा कपिलवस्तु के प्राणप्रिय सूर्य्य को वैराग्य के घोर बादलोंसे अवश्य बाहर लावेंगे और हमलोगों की आकांक्षा हमारी आशा के शिखर पर पहुंचावेंगे।

जो कष्ट है हृदय में उसका बिनाश होगा।
औ शान्ति रूप सुख का पूरण प्रकाश होगा॥
चिन्ता न कीजिए अब, भगवान हैं दयामय।
विनती सुनी है अपनी, आनँद विकाश होगा॥

शुद्धोदन--अमात्य, आज मेरा हृदय प्रसन्नता से फूला नहीं समाता है, आज मेरी आशा का केन्द्र मेरे हृदय में स्थापित होता जाता है। अहा! यदि मेरा संन्यास-प्रिय सिद्धार्थ

संसार-सागर का बहादुर नाविक बने तो कपिलवस्तु के भाग्य का सितारा अवश्य जगमगा जाय।

अमात्य—कृपानिधान! कुमार कपिलवस्तु के भाग्य के सितारे को चमकावेंगे, इतना ही नहीं, वरन् उनकी मंगलमयी यशोमयी, सुनहली ध्वजा सर्वत्र फ़हराएगी [असित ऋषि पधारते हैं। महाराज और अमात्य दण्डवत् करते हैं]

शुद्धोदन—ऋषि-राज! दंडवत्। पधारिये।

असितऋषि—आयुष्मान् भव, राजेन्द्र! आज आपको तथा समस्त नगरवासियों को प्रफुल्लित देख कर मेरा हृदय गद्गद् हो रहा है।

शुद्धोदन—ऋषिराज, आप ऐसे महात्मा के पूर्ण दर्शन से कौन आनन्द नहीं पाता किसका चित्त प्रफुल्लित नहीं हो जाता?

असितऋषि-नहीं राजन्, यह बात मैं नहीं मानने का। इस प्रसन्नता का असल तत्व तो यह है कि इस दुःख मय संसार में आपके योगेश्वर कुमार के जन्म लेने से सकल विश्व हर्ष-मय हो रहा है, आपके विरक्त पुत्र के उत्पन्न होने से तथा अपने दुःखों को शीघ्र नष्ट होने की अभिलाषा से चित्त प्रसन्न हो रहा है।

शुद्धोदन—प्रभो "विरक्त, योगेश्वर" ऐसे शब्दों से मेरे हृदय की पीड़ा को न बढ़ाइए, मैं अपने नेत्रों के तारे को बियाबान जंगलों की अँधेरी गुफाओं में भेजने का अभिलाषी नहीं हूँ, मैं अपने जीवन के सहारे को वैराग्य-पन्थ पर चलाने में सहमत नहीं हूँ—

कहाँ यह राज का सुख औ कहाँ जंगल तपोवन का।
कहाँ यह राज्य शासन का कहाँ वह योग साधन का॥
मेरी इच्छा है मेरा बाल दिग्विजयी महीपति हो।
प्रफुल्लित हो, प्रमोदित हो, धरातल का शचीपति हो॥

असितऋषी—क्या कहा ?

शुद्धोदन—महात्मन्! जगत् के छुटकारे को तो आप ऐसे साधुओं ने जन्म लिया है। वैराग्य-प्रिय बनने को तो परमात्मा ने आप ऐसे महात्माओं को उत्पन्न किया है। भला क्या मेरा सिद्धार्थ, मेरा कोमल पुष्पसदृश राजकुमार, संन्यास के व्रत तथा तप सहन करने में समर्थ होगा? नहीं! नहीं! कदापि नहीं! योगिराज! आप कृपया अन्तःकरण से ऐसा आशीस् दीजिये कि मेरा बालचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र की भाँति संसार के समस्त धर्म्मों को पार कर अपने को, अपने परिवार को तथा अपने राज्य और प्रजा को सुख और ऐश्वर्य्य का पात्र बनावे और महान् चक्रवर्ती हो कर समस्त संसार में विजय की पताका फहरावे।

असित ऋषि-राजन्! यदि आप ऐसे विद्वान् हो कर इस कल्पित संसार के क्षणिक सुख को इस प्रकार चाहेंगे तो भला जगत् की अनेक आशाएँ कैसे पूर्ण होंगी? यदि आप ही इस अन्धकारमयी माया में फँस कर ऐसा विचार प्रगट करेंगे तो विश्व के दुःख को कौन दूर करेगा? तब तो समस्त आशाएँ अपूर्ण होंगी। सिद्धार्थ कुमार चक्रवर्ती-यश अवश्य लाभ करेंगे, इसमें तिल मात्र भी संदेह नहीं। परन्तु, वह पृथ्वी के राज्यों के चक्रवर्त्ती होंगे अथवा सकल विश्व के प्राणि मात्र के ? यही

एक प्रश्न है। राजन्! आप राजकुमार को लेकर सांसारिक मनोरथों को पूर्ण करना चाहते हैं। और वहाँ दया का सागर राजकुमार, संसार के प्रति अपना धर्म निबाहना चाहते हैं। परिणाम ईश्वर के हाथ है! [ऐसा कह कर सहसा असित ऋषि चले जाते हैं। शुद्धोदन नरेश भी चुम्बक की भांति ऋषि के साथ जाते हैं। इतने में राजपुरोहित हांफते हांफते व्याकुल बने प्रवेश करते हैं, और ठोकर लग जाने के कारण मुंह के बल गिर पड़ते हैं। अमात्य उनको उठाता है।]

अमात्य—[हँस कर] पुरोहित जी, यह क्या गड़बड़ है?

पुरोहित—[अपने मोटे पेट पर हाथ फेरते हुए] गड़बड़ तो क्या अन्धकार है, हाहाकार है। क्या कहूँ क्या न कहूँ!

अमात्य—जो हो स्पष्ट रूप से कहिये।

पुरो०—[हांफते हांफते] क्या कहूँ! समस्त कुमारियाँ आ पहुँची हैं और कुमार भी आना ही चाहते हैं, इस पर भी आप इस मण्डप को नहीं छोड़ना चाहते हैं, भला बताइये, मैं सुन्दरियों का स्वागत किस रीति से करूँ?

अमात्य—पुरोहित जी, घबराइये नहीं, यह मण्डप अब आप के अधीन है, अब आप बेधड़क अपनी रसिकता के घोड़ों को चलाइये, उनको एड़ें लगाइये।

पुरोहित—तथास्तु! [अमात्य जाता है, सारथी चन्न एक परिजन के साथ आता है]।

पुरोहित—क्यों रसिक मधुकरो! क्या तुम लोग इस नन्दनवन की मनोहर लताओं से टपकती हुई सुगन्ध लूटने के लिए उड़ आए हो?

चन्द्र--जी हाँ ! भ्रमर-राज ! आप के पीछे पीछे हम लोग भी लोहचुम्बक की भाँति खिंचते खिंचते चले आये हैं, कहिये क्या आज्ञा है ?

पुरो०—तथास्तु, आज्ञा यह है कि जिस प्रकार वर्षाऋतु में पर्वतों और जंगलों को भेद कर नदियाँ सागर को आलिङ्गन करने के हेतु आतुर हो जाती हैं, उसी प्रकार यहाँ आई हुई अनेक कुमारियाँ आप ऐसे अरसिक पत्थरों और झंखाड़ों को भेद कर श्रीकुमार के सागररूपी हाथों से मिलने के लिये घबरा रही हैं।

चन्द्र—ओहो !

पुरो०-इस हेतु आप सब अरसिक सज्जन, सभ्य तथा नम्र बनकर एक ओर स्थिर होकर खड़े हो जाइये, तब मैं उन रस की पुतलियों से मण्डप में पधारने के लिये प्रार्थना करूँ।

चन्द्र - वाह वाह ! कैसी रसिकता, कैसी नम्रता, कैसी सभ्यता आप ने पाई है !चतुरानन के बाद आप ही को गणपति की पदवी देने की घड़ी आई है। परन्तु पुरोहित जी, आप के इस कोमल मुख पर पसीने की बूंदें क्यों टपक रही हैं ? मालूम पड़ता है कि, इस रसिक भाषण में आप को अत्यन्त परिश्रम हुआ। अतएव कुमारियों के स्वागत का परिश्रम मैं और आप को उठाने देना नहीं चाहता। यदि यह काम मैं सम्पादन करूं तो क्या कोई हानि है ?

पुरो०--(क्रोधित हो कर) कैसी मूर्खता, कैसी धृष्टता, कैसी अविवेकता, कैसी अरसिकता, सारथी सरदार ! यहाँ कुछ घोड़ों को रथ में जोतने का काम नहीं है। यहाँ तो रस-मन्दिर में कुसुम-कलियों की पुष्पमाला गूंथनी है। इस में कैसी सभ्यता,

कैसी चपलता, कितनी मधुरता की आवश्यकता है । यह भला आप क्या समझें कि यह कार्य्य जितना गम्भीर है, उतना ही मीठा भी है । समझे ? जाइये । अब अधिक अपनी शुष्कता के भण्डार को प्रकाश करने का प्रयत्न न करिये । कृपया कुमार को शीघ्र ही भेजने का प्रबन्ध कीजिये । इस बीच में मैं अपना कार्य्य भले प्रकार सम्पादन कर लूंगा ।

चन्न—निस्सन्देह कुमारियों का आदर करना आप ही ऐसे रसिकों का कार्य्य है । अच्छा, मैं जाता हूँ और राजकुमार को लेकर आता हूँ (चन्न जाता है ।)

पुरो०—[स्वगत घमण्ड से] क्यों, मूर्ख-शिरोमणि को कैसा मार्ग बताया ?

परिजन—[उसको चिढ़ाने के लिये] तथास्तु ।

पुरो०—हाँय ! कौन है ? [परिजन भाग जाता है, पुरोहित उद्यान के दूसरे भाग में से कुमारियों को बुलाता है ।] पधारो कुमारियों ! अब यहाँ सुख से पधारो । [कुमारियाँ आती हैं] । जब तक श्री कुमारजी यहाँ आवें तब तक चांदी की घण्टी के तुल्य अपने मधुर स्वरों से इस मण्डप को नचाइये, इसे इन्द्र-कानन बनाइये [कुमारियां हँसती, लजाती, एक दूसरे को खींचती, तथा गाने के लिये उसकाती हैं । पुरोहित अधीर हो कर चुप नहीं रह सकता, जल्दी मचाता है ।]

पुरोहित—इस में लजाना कैसा ? संगीत से मुँह छिपाना कैसा ? ब्रह्मा ने इस सेवक को यदि गायन कला तथा आप लोगों जैसे मधुर कण्ठ से भूषित किया होता तो मैं समस्त कपिलवस्तु में प्रति घर संगीत-विद्या को फैलाता, इसे सब विद्याओं से ऊँचा बनाता ।

प्रेमलता—[एक कुमारी] ओहो! ब्रह्मा ने कितनी भारी भूल की!

पुरो०—अच्छा, प्रेमलता! जो वस्तु मुझे देनी थी, उसे ब्रह्मा ने तुम्हें देकर अपनी भूल सुधार ली, कृपया कोई मधुर संगीत से इन कानों को पवित्र करो।

प्रेमलता—जी! मुझे तो एक भी गीत नहीं आता। इस विद्या में तो शान्ति देवी परिपूर्ण हैं! [शान्ति से] क्यों बहिन शान्ति! इसमें लजाने की क्या बात है? घर से चलते समय तो बड़ी आशाएँ मन में भर लाई थीं, और अब पीछे छिपी जाती हो, अपने शान्तिमुख को सामने भी नहीं लाती हो।

शान्ति—वाह वाह! यह तो तू अपने हृदय की बातें स्वयं अपने मुख से सुनाती है! तू ने जो बातें बहिन यशोधरा से की थीं, मुझे सब ज्ञात है। क्यों बहिन यशोधरा, ठीक है न?

यशोधरा—कौनसी बात! मुझे तो कुछ भी नहीं है याद।

शान्ति—भला यहाँ आने पश्चात् कोई भी बात क्यों याद रहेगी? यही तो इस उद्यान की महिमा है।

पुरो०—अरे, तुम लोगों ने यह दलील करना कहाँ से सीख लिया? यह काम तो पुरुषों का है। तुम जैसी सुन्दरियों का क्षेत्र तो रसिक विचार, रसिक वाणी तथा रसिक आचार है।

शान्ति—बहिन यशोधरा! पुरोहित जी की इच्छा है कि अपनी रसिकता का कोई नमूना दिखाओ। उनके कान तुम्हारे कण्ठ की मीठी ध्वनि सुनना चाहते हैं, उन्हें कोई गाना सुना कर उनके कानों को पवित्र बनाओ।

यशोधरा—भला मुझे आता ही क्या है कि मैं गाऊँ! तू ही कुछ सुना दे, पुरोहित जी के कानों को तृप्त कर दे।

शान्ति–नहीं, तुम्हें ही गाना होगा [सब कुमारियाँ यशोधरा से गाने के लिये आग्रह करती हैं, ऐसे ही अवसरमें कुमार सिद्धार्थ चन्न सारथी के साथ प्रवेश करते हैं, कुमारियाँ लजाकर एक कोने में खड़ी हो जाती हैं।]

पुरो०—(कुमार का स्वागत करते हुए) पधारिये, कृपानिधान !

सि०-पुरोहितजी ! आज तो आप बड़े प्रसन्न दिखाई देते हैं!

पुरो०—तथास्तु, राजकुमार ! ईश्वर करे मैं सदा ऐसा ही हर्षयुक्त रहूँ, आप के हृदय में आनन्द लाने के हेतु जो प्रसंग रचाया जाय उसे देख मैं सदा मुदित होऊँ। श्रीकुमार, सब आई हुई कुमारियाँ आप के ऊपर पुष्पवृष्टि करने तथा आप के कोमल हाथों से स्वर्ण पात्रों की भेंट लेने के लिये व्याकुल हो रही हैं।

सि०-पुरोहितजी, इस आडम्बर और उत्सव का कारण?

पुरो०-श्रीकुमार ! माता गौतमी और महाराज के आज्ञानुसार आपके जन्मोत्सव के उपलक्ष में यह उत्सव मनाया गया है, और इन कुमारियों को आपके हाथों से स्वर्णपात्र की भेंट दिलाने के लिये बुलाया गया है।

सि०-परन्तु क्या महाराज को विश्वास है कि इस उत्सव से, इस आडम्बर से, मेरे मन को शान्ति मिलेगी ? मेरे हृदय में जो जलती ज्वाला है, वह.....

पुरो०-हाँ कृपानिधान,हम सब की यही आशा है कि इससे आपके कोमल हृदय को शान्ति मिलेगी।

सि०-(करुणापूर्वक) पुरोहितजी ! जिस में तुम लोग आनन्द समझते हो, उस में मुझे कुछ भी आनन्द नहीं है। जैसे जैसे तुम लोग यह सब धूमधाम के उत्सव मनाते हो, वैसे वैसे मेरा शून्य हृदय जगत् के कल्लोल से दुःखित होता जाता है [चन्न से] प्यारे चन्न ! तुम्हें तो याद होगा कि महाराज थोड़े दिन हुए मुझे वसन्तऋतु की ईश्वरीय शोभा दिखलाने के लिए बाहर ग्राम में ले गये थे।

चन्न-मुझे अच्छी तरह याद है, धर्मावतार !

सि०-तो तब तुम्हें यह भी स्मरण होगा कि उस दिन रंग बिरङ्गे सुगंधित फूलों से झुके हुए सुन्दर वृक्ष, सर्वत्र व्याप्त शान्ति में रमणीय मधुर मयूर की पुकार, आनन्द से कलरव करते हुए भोले पक्षीगण, वेग से बहते हुए स्वच्छ झरने, बरफ़ जैसे सफेद हंस की जोड़ी, शोभायमान सरोवर तथा नदियाँ आस पास के हरे भरे धानों के खेत, यह सब सौन्दर्य्य देख कर सब लोग प्रसन्न हो गये थे, परन्तु क्या इन बातों से मुझे तनिक भी आनन्द मिला था ? क्या एक घड़ी भर के हेतु भी मेरी आत्मा का पुष्प हर्ष से खिला था ?

चन्न-नहीं ! प्रभो नहीं !

सि०-पुरोहित जी, क्या तुम जानते हो कि उस समय मेरी आत्मा में एक महान् हृदयविदारक दृश्य घूम रहा था, मेरे हृदय में जगत्रूपी गुलाब के नीचे कांटा चुभ रहा था। अहा ! पास ही में निर्बोध अबोल बैल की गर्दन पर मोट लादे चाबुक से उसकी चमड़ी उखाड़ते हुए किसान, दूसरी ओर भूख प्यास से छटपटाते गरीब बिचारे बछड़े अज्ञान, यहाँ आज ये स्वर्ण भरे हुए पात्र साथ हैं, तो दूसरी ओर भूख से छटपटाते, बि-

लबिलाते, एक मुट्ठी भर अनाज के लिये हाथ फैलाते भिक्षुक अनाथ हैं। यह कैसा जगत् का भेद है। इस दुःखदायक जीवन को पार करने के लिये मेरा मन तड़प रहा है।

इक हाय करे, इक वाय करे, इक आनँद से विचरे जग में।
कुछ ध्यान नहीं है मूरख को किति आग की नदियाँ हैं मग में॥
नहिं साथ चले यह धन सम्पति, फिर भी स्वारथ का भूत चढ़ा।
करुणा जग की यह मारत है शर ज्वाल बनी मम रग रग में॥

चन्न—कृपानाथ, आप तो दया के सागर हो, गुण के आगर हो। आपको तो बाल्यावस्था ही से प्राणी मात्र का ध्यान है, उनकी दशा का शोक महान् है, तो क्या आप उसी प्रेम के नाते यहाँ आई हुई कुमारियों की आशा पूर्ण न करेंगे?

पुरो०—कृपानिधान, क्या आप महारानी तथा महाराज के हृदय के बहुत दिनों के शोक को न हरेंगे?

सि०—नहीं चन्न! नहीं पुरोहित जी! मेरा हृदय ऐसा कठोर नहीं है कि मैं इन बालाओं तथा माता पिता के हृदय को दुखाऊँ। यदि मेरे द्वारा उन्हें सुख मिले तो मेरे अहोभाग्य हैं, पुरोहित जी! जिसमें तुम लोगों को संतोष मिले, आनन्द मिले, मैं वही कार्य्य करने के लिए उद्यत हूँ।

चन्न—बड़ी कृपा!

पुरो०—अब यदि आप की आज्ञा हो तो कुमारियाँ अपनी अपनी भेंट लेने के लिये आपके चरण के पास आवें?

सि०-आनन्दपूर्वक।

चन्न-सुन्दरियो! एक के पीछे एक, इस भाँति से आप लोग कुमार के आसन के पास आकर अपना अपना पात्र ले कर चली जाइये। [लज्जावश कोई कुमारी नहीं आती।]

चन्न—[पुरो० से] कहिये पुरोहितजी, यह लज्जा कैसी ?

पुरो०—लज्जा कैसी है! यह तो जब आप कुमारी होते तब ज्ञात होता। वहाँ से आसन के समीप आने में कितना श्रम पड़ता है, वह घोड़े का सारथी भला क्या समझ सकता है जिसने एक एड़ लगाई और दो कोस की मञ्जिल पूरी बनाई।

च०—(हँसते हँसते) आप जिस बारीकी से कुमारियों के हृदयों को देखते हैं वह बारीकी मेरे में नहीं है। अच्छा, अब आप ही कृपया शीघ्र कार्य आरम्भ कीजिए।

पुरो०—(हँस कर) तथास्तु, अब आपको अपनी और मेरी शक्ति समझने की योग्यता हो गई। [कुमारियों से] रमणियो ! पधारिये, इस स्वर्ग-समान मण्डप में दूसरा स्वर्ग उतारिये और अपने पात्र लेकर यहाँ से सिधारिये [कुमारियाँ धीरे धीरे आसन के पास आती हैं, परन्तु समाधियुक्त कुमार की दृष्टि उस ओर नहीं जाती, पुरोहित कुमार के हाथ में पात्र देता है।]

पुरो०—कुमार जी ! गुलाब की कली तुल्य अपने गोरे गाल के ऊपर लज्जा के चिन्ह सहित आपके चरणकमल के दर्शन के हेतु यह बाला खड़ी है, कृपा कर इसका सत्कार कीजिये। [महा समाधि से जागकर कुमार पुरोहित के हाथ से पात्र लेकर शान्ति के हाथ में देते हैं, वह लेकर हिरण की भाँति भाग जाती है। इसी प्रकार लगभग सब कुमारियाँ अपना अपना पात्र ले जाती हैं। परन्तु सिद्धार्थ वैसे ही उदासीन हैं।]

चन्न—(स्वगत) अहा ! कैसा मुदमंगलमय दिखाव है ! कैसी सुन्दर रमणियों का जमाव है। फिर भी राजकुमार की आत्मा विरक्त है। सिद्धार्थ, यथार्थ में तुम महान् योगी और संन्यासी

हो [चन्न तथा पुरोहित आदि निराश होकर दूसरी ओर जाते हैं यशोधरा सब के पीछे होने के कारण अपना पात्र लेने के हेतु खड़ी है, एक क्षण में सिद्धार्थ मानो पूर्व जन्म का सम्बन्ध जान आँखें खोल कर यशोधरा से मिलाते हैं।]

यशोधरा—श्रीकुमार, मुझे पात्र मिलना चाहिये ।

सि०—अहा ! तुम्हारा पात्र तो मैं भूल ही गया था, तुम्हें तुम्हारा भाग अवश्य ही मिलेगा, [पात्रों के स्थान की ओर देख कर] परन्तु रमणियों की रानी, मुझे क्षमा करो, मेरे पास अब एक भी पात्र नहीं है, भला इस दण्ड के बदले में मैं तुम्हें क्या दूँ ? [सहसा नया विचार उत्पन्न होता है] अरे हाँ, स्वर्ण-पात्र के बदले कण्ठहार स्वीकार करो । [एक पल में कुमार अपने गले का हार यशोधरा के गले में डाल देते हैं और हार के साथ अपना हृदय हार देते हैं !]

अंक पहिला । दृश्य दूसरा ।

केशवचन्द्र की हवेली ।

(कपिलवस्तु का धनाढ्य सेठ केशवचन्द्र विचारता आता है)

केशव—मनुष्य का हृदय भी कैसी कैसी ओछी आशाओं से भरा भंडार है। मानो तनिक सी चूक पर नरक में जाने का एक द्वार है। जिस समय मैं एक हीन युवा, एक निस्सहाय व्यक्ति, इस संसार में एक पतङ्ग की तरह भटक रहा था, उस समय मेरे दिल के भीतर कैसी कैसी रमणीय

अभिलाषाएँ तथा मेरी नस नस में कैसे कैसे नवीन उद्योग घूम रहे थे कि अगर मैं धनाढ्य हो जाऊँ, अगर चार पैसे वाला कहाऊँ, तो दरिद्रों की दरिद्रता जड़ मूल से नाश कर दूँगा, संसार के उद्धार का प्रकाश कर दूँगा, चारों ओर आनन्द के प्रभाकर का विकाश कर दूँगा, परन्तु जब आज परमात्मा की दया से इतनी सम्पत्ति इतने वैभव का अधिकारी हुआ, इतना धन, इतनी जमींदारी का सत्वाधिकारी हो गया तो आज मैं अपने कर्त्तव्य के चारों ओर एक बालू की नींव पर बना हुआ कच्चा मकान पाता हूँ! हा, यदि मैं सहसा मृत्युवश हो जाऊँ तो क्या यह कह सकता हूँ कि मैं कृतकृत्य हो कर संसार को प्रणाम करता हूँ! नहीं, कदापि नहीं! वरन् मेरे मुख से यही निकलेगा कि मैं महासागर में एक बुलबुले की तरह पैदा हुआ, और वहीं नष्ट हो गया। और मेरा मनोरथ भारी निष्फलता तथा निराशा के साथ भ्रष्ट हो गया (सेवक आता है।)

सेवक—स्वामी! सरयूराम पधारे हैं और आप से मिलना चाहते हैं।

केशव—उन्हें यहाँ ले आओ।

सेवक—जो आज्ञा। (जाता है।)

केशव—आज बहुत दिन के बाद सरयूराम से मिलकर मुझे अवश्य आनन्द मिलेगा। अहा! इनके ऐसा उज्ज्वल चरित्रधारी, परिश्रमी तथा स्वाभाविक प्रेमी, मेरे देखने में और कोई मनुष्य नहीं। (सरयूराम आते हैं।)

केशव—आइये आइये सरयूरामजी, आज तो बहुत दिनों के पश्चात् यहाँ पधारना हुआ। कहिये सुखी तो हैं न? आप

के बाल बच्चे तो अच्छे हैं ? आपकी भजन-मण्डली तो अच्छी है न ?

सरयू—सेठ जी ! हमारी भजन-मण्डली सूख गई। धनवानों को हमारे सुख दुःख की चिन्ता ही क्या है ! गरीबों के बच्चों को पहिनने के लिये चीथड़े हैं अथवा खाने पीने को रोटी के टुकड़े हैं यह जानने की धनवानों को परवा ही क्या है, आवश्यकता ही क्या है ?

केशव-शिव शिव ! धनवानों की ऐसी अप्रतिष्ठा ! ऐसे कुवचन सुन कर मेरे हृदय को वेदना पहुँचती है। फिर भी कहिये आपके दुःख का क्या कारण है ?

सरयू-क्या बताऊँ, क्या आप इससे अनजान हैं ? क्या देवदत्त की कठोरता तथा जुल्म से अज्ञान हैं ? वह घातक बनकर मेरा लहू चूस रहा है। साथ ही दूसरे दूसरे जागीरदारों को उसका उसका कर मेरे पीछे षड्यन्त्र रचने का प्रयत्न कर रहा है।

केशव-परन्तु इसका कारण ?

सरयू-कारण ! और कुछ नहीं, थोड़े दिन हुए उन्होंने मेरे पास दस मन दूध की मांग भेजी, मैंने सारे पड़ोस से माँग माँग कर दूध इकट्ठा किया, और लगभग चार मन दूध लेकर उनके द्वार पर गया, परन्तु आप जानते हैं-इसका बदला उन्होंने मुझे क्या दिया ?

केशव-क्या दिया ?

सरयू-गालियाँ, क्रोध का प्रहार, और आज कल जो कर रहे हैं वह अत्याचार !

केशव-कौन सा अत्याचार ?

सरयू-स्वामी ! ऋण की मीयाद पूरी हो गई। गये वर्ष जो पुत्र और पुत्री के ब्याह के लिये मैंने देवदत्त से ५००) उधार लिये थे उसकी अवधि पूरी हो गई। मूल और सूद मिल कर २०००) हो गये !

केशव-हैं ! मूल ५००) और सूद १५००) ?

सरयू-हाँ सेठ जी ! आवश्यकता ही के समय हम किसान मारे जाते हैं। इसी गरीबी के कारण हम इस अत्याचार के घाट उतारे जाते हैं।

केशव-कोई चिन्ता नहीं। तुम निःसंकोच होकर मुझसे मूल ब्याज सहित रुपया ले जाओ, देवदत्त का कर्ज़ा चुकाआओ।

सरयू-सेठ जी, आप तो दया के भण्डार हैं परन्तु इस घड़ी घड़ी की सहायता से मुझे लज्जा आती है, मेरे हृदय में ग्लानि समाती है।

केशव-सरयूराम, इसमें लजाना कैसा ? इसमें ग्लानि का आना कैसा ? जब धनवानों को आवश्यकता हो तुम्हें बलपूर्वक बुला लें, तुम्हें बेगार कह कर तुमसे काम करा लें, उन्हें लज्जा न आवे, और जब तुम्हें आवश्यकता हो तुम धनवानों से सताए जाने से सहायता के लिए विवश किए जाओ तो उसमें लज्जा, नहीं नहीं तुम निःसंकोच हो कर मुझ से रुपया ले जाओ। [केशवचन्द्र की पुत्री सरला आती है।]

सरला-पिता जी ! देवदत्त जी आए हैं दूसरे आँगन में बैठे हैं, मैंने कह दिया है कि आप एकान्त में कुछ आवश्यक काम कर रहे हैं।

केशव—उन्हें यहीं भेज दो । यहां एकान्त की कोई आवश्यकता नहीं है ।

सरला—मैं अभी भेज देती हूँ । [स्वगत] पिता जी को एकान्त पसन्द नहीं, परन्तु मुझे तो माधव के साथ एकान्त ही में आनन्द है । (जाती है ।)

सरयू—सेठजी ! यह घर बैठे आशा पूर्ण हुई है । आप तनिक देवदत्त जी को समझाइए, उन्हें राह पर लाइये ।

केशव—अच्छा, आप जाइए मैं उन्हें समझाऊँगा और यदि वह न मानेंगे तो मैं उन का मूल सूद सहित देकर आप को ऋण से बचाऊँगा ।

सरयू—जय गोपाल । अन्नदाता ! यदि ईश्वर आप को ऐसा सज्जन सबको बनाए तो हम गरीबों की बन आए । [एक तरफ से सरयू जाता है, दूसरी तरफ से देवदत्त आता है ।]

केशव—आइए । देवदत्तजी ! आज किधर सूर्य्य निकले जो इधर पधारे ?

देवदत्त—हाँ, कुछ आप से काम है परन्तु पहले यह तो बताइए कि सरयू यहाँ किस लिए आया था ?

केशव—वह बिचारा अपना दुःख रोने आया था । आप बैठिए मैं आप को सब कुछ समझाता हूँ ।

देव०—आप के बातचीत करने से पहले ही मैंने अनुमान कर लिया है । भूमिका ही से पुस्तक का तत्व जान लिया है । देखिए ! आप ने उन मूर्खों को दया दिखा दिखा कर एक दम सुस्त और उद्दंड बना दिया ।

केशव—देवदत्त जी ! मेरी दया सुयोग्य पात्र के लिए है अयोग्य के लिए नहीं है। यदि परमात्मा ने आप को सबल बनाया है तो निर्बल पर दया दिखाना ही मुख्य धर्म्म है, यही एक सबसे बड़ा और ऊँचा कर्म है।

देव०—देखिए, आप इन नीचों पर दया दिखला कर इनमें जो अशान्ति फैला रहे हैं, इन कमीनों को जो धन से सहायता पहुँचा कर इनके ओछे दिलों को उद्दंड बना रहे हैं यह काम अच्छा नहीं।

केशव—इन गरीब किसानों पर आप को इतना अप्रसन्न देख कर मुझे बड़ा दुःख होता है। मनुष्य मात्र के उदर-पोषण के लिए जो बिचारे गरीब किसान इतना दुःख, इतनी तकलीफ, सहकर हम सबको अन्न से भरते हैं उनकी मर्य्यादा में ऐसी गालियां सुन कर मेरा दिल भीतर ही भीतर रोता है। देवदत्तजी, जरा विचारिए तो सही। गर्मी के प्रचंड सूर्य्य की धूप, वर्षाऋतु की मूसलधार बौछार और जाड़े की कड़कड़ाती सर्दी यह सब सहन करते, सूखी रोटी पर सन्तोष प्रगट करते, और अपना निर्वाह करते हुए यही गरीब, यही नीच किसान आप की सब आवश्यकताएं दूर करते हैं। आप को अन्न से, घी से, दूध से भरपूर करते हैं। और आप इस अनन्त उपकार--इस परम स्वार्थत्याग का बदला उन्हें क्या देते हैं ? गालियों की बौछार ! 'नीच' शब्दों का अलंकार ! देवदत्तजी ! जरा विचारिए और फिर देखिए कि ये जैसे किसान दुतकारने के लिए हैं, या पुचकारने के लिए।

एक समय वह भी था भाई, कृषक आर्य थे कहलाते ।
इसी स्वर्णमय भारत में थे, अन्न दातृ का पद पाते ॥
आज उन्हीं की दशा निहारो, कैसे वे बेहाल हुए ।
लक्ष्मीपति जो रहे सदा ही, वो अब हैं कंगाल हुए ॥
अब भी सोचो, इन्हें न दुख दो, नहीं, भाग्य यह सोएगा ।
एक एक दाने के कारण यह भारत फिर रोएगा ॥

देव०—[हँसकर] अहा हा ! आप ऐसी हल्की स्थिति-वाले इन्हीं बातों में संतोष करते हैं परन्तु हम लोग जिन्हें अपनी दशा शिखर पर पहुँचाना है अपने को सब से बड़ा धनवान् मनुष्य बनाना है ऐसी ऐसी ओछी बातों की ओर ध्यान नहीं देते । सरयूराम से मैं आजही अपने कुल रुपये सूद सहित ले लूंगा और नहीं तो उसके खेत में आग लगवा कर उसे क़ैदखाने भेजवा दूंगा ।

केशव—तो मैं अपने धन से उसकी सहायता करूँगा। उसे बचाऊँगा, उसे तुम्हारे अत्याचारों से छुड़ाऊँगा ।

देव०—तो तुम याद रखना कि तुम्हें इस घमंड का बदला चुकाऊँगा । तुम्हारे शीश पर संकट के बादल बरसाऊँगा ।

मेरी आशा के जो तू बीच में टांगें अड़ाएगा ।
तो इतना ध्यान रखना देवदत्त बदला चुकाएगा ॥

केशव—तू इतना विवेकशून्य है यह मुझे आज ज्ञात हुआ ।
जो है अभिमान मस्तक में वह सब इक आन टूटेगा ।
घड़ा है भर चुका दुष्कर्म का हर आन फूटेगा ॥
कठिनता आ पड़े नहिं फिर कहीं इज्जत बचाने में ।
जिसे तुम चाहते हो लूटना वो तुमको लूटेगा ॥

देव०—सम्हल जा। मैं पुनः कहता हूं सम्हल जा। मेरे बीच में टांग न अड़ा।

केशव—नहीं तो क्या होगा?

देवदत्त—बुरा होगा।

मेरा अपमान करके एक पल तू रह नहीं सकता।
समझ अजगर मुझे, विषधर की ज्वाला सह नहीं सकता॥

केशव—जा! जा! कल के छोकड़े। जा! बहते हुए पानी के बुलबुले की तरह अधिक न बलबला।

[दोनों क्रोध में एक एक ओर चले जाते हैं।]

अंक पहिला। दृश्य तीसरा

महाराज दंडपाणि का उपवन।

(आज महाराज दंडपाणि की कन्या यशोधरा की वर्षगांठ है। यशोधरा एक कुञ्ज के सहारे खड़ी है)

गाना।

पय समझी जिसको, पिया, पिया है विष की धार।
पिया पिया पय ना पिया, पिया पिया गइहार॥
जादूगर ने प्रेम जाल बिछाया, पलभर में मोको अपनाया।
दर्शन को नयना ललचाया॥ जादूगर०

कविता! कविता! कि कवि लोग इसको किस प्रकार से रचते थे किसी समय मुझे यह आश्चर्य युक्त ज्ञात होता परन्तु आज यह हृदय कैसा कवितामय हो रहा है।

यही जी चाहता है कि कविता के ग्रन्थ के ग्रन्थ लिख डालूँ ! [थोड़ी देर सोच कर] प्रभाव ! प्रभाव ! कैसा आकस्मिक प्रभाव, एक बार नयनों का कटाक्ष और हृदय पर इतना भारी घाव ! अहा !

दरशन सों लागे लगन, लगन लगी तब प्रीति ।
प्रीति भई तब बढ़ गई, मन मिलाप की रीति ॥

परन्तु इसमें मेरा दोष क्या है ? जब सीता, रुक्मिणी, इत्यादि विदुषी महिलाएँ एक क्षण भर के नेत्र-कटाक्ष से राम तथा कृष्ण के वश में हो गईं तो भला मेरी बिसात ही क्या है उन लोगों के आगे मेरी बात ही क्या है ?

यही मन की है इच्छा अब कि दासी उनकी कहलाऊँ ।
करूं सेवा उन्हीं की औ सती नारी मैं बन जाऊँ ॥
न चञ्चल हो, हृदय मेरे ! तनिक अब धीर तू धर ले ।
सफल होगी सकल आशा तुझे कितना मैं समझाऊँ ॥

अरे रे ! यह मैंने क्या कह डाला ? कहीं सहेलियाँ सुन लेंगी तो अनर्थ हो जायगा । [पुष्पलता हाथों में पुष्पमाला लिए हुए आती हैं]

पुष्पलता—आली ! यह मैंने पुष्प-माला बना डाली । इसे पहिनो । [यशोधरा शीश झुका कर माला पहनती है, शान्ति दूसरी पुष्प-माला लाती है]

शान्ति—प्यारी बहिन ! क्या तुम मेरी भी पुष्प-माला न धारण करोगी ?

यशोधरा—क्यों नहीं । [माला पहनती है]

शान्ति—अहा !

उर पर कुच, कुच कंचुकी, कंचुकि ऊपर हार।
तहां जाय मोहित भयो, पिय मन करै विहार॥

[मालती आती है]

माल०—अरे! यहाँ तो पिया, पियाका राग अलाप धुन लगा रक्खा है। भला किसी ने उस उद्यान का रस भी चक्खा है।

यशोधरा—बहिन मालती! क्या तुझे ज्ञात नहीं है कि आज कामदेव के हेतु रति इकट्ठी हो रही हैं? इसी से तो यह ठट्ठा कर रही हैं।

शान्ति—हाँ! हाँ! ठीक है! ठीक है! आज हमारी रति को कामदेव ही का ध्यान है। आज बहिन यशोधरा का जन्म-दिवस नहीं है वरन् यशोधरा देवी के मनोमंदिर में कामदेव के जन्म-दिवस का सन्मान है, तभी न ऐसी प्रसन्नता महान है।

यशोधरा—हाँ! तभी तो रति देवी ने कामदेव के गले में पुष्पों का हार पहिनाया है

पुष्प०—अजी! पुष्पों का हार तो एक तुच्छ उपहार है परन्तु वह मणियों का हार कहाँ है जिसे अपने गले में डाल कर किसी बेजान पहिचानवाले आदमी को अपना बनाया है?

यशोधरा—कैसा मणियों का हार?

शान्ति—अहा! बिचारी कैसी भोली बन गई, जानो कुछ जानती भी नहीं। कैसा हार!!

पुष्प०—यशोधरा बहिन! यह चोरी करना और फिर उसके छिपाने की विधि कहाँ से सीखी?

मालती—प्रमोदभवन से ! सिद्धार्थ कुमार से !

जिसका प्रसाद पाकर, वश में हुई है आली ।
जिस चित्त-चोर ने है, मणिहार फांस डाली ॥
शिक्षा है ये उन्हीं की, है सब कला सिखाई ।
मणिहार पाके भोली, मन-हार हार आई ॥

गाना ।

दिलदार यूं लुभाये अनंग रंग छाये ।
जब बेबस हो विबस हुई है, रह रह के पछताये ॥रूप०॥
प्रेमहार की उलझन ऐसी, सुलझे क्या सुलझाये । रूप०

यशोधरा—बस ! बस ! मुझे अधिक न सताओ । अपने कटाक्ष-बाणों का मुझे शिकार न बनाओ ।

शान्ति—अजी ! शिकार बनाने वाले हम कौन ? बाण चलाने वाले हम कौन ? यह काम तो.....

[सरला अचानक आती है ।]

सरला—[आते हुए] सिद्धार्थ का है ।

यशोधरा—नहीं ! नहीं ! माधव का है ।

सरला—क्यों सिद्धार्थ के नाम से कैसा मुँह बिचका लिया, कैसा मुँह फुला लिया !

यशोधरा—और माधव के नाम से तू कैसी रिसा गई !

सरला—नहीं प्यारी बहिन ! पहले तुम तब माधव ।

यशोधरा—हृदय से कहती है या केवल मुख से ?

सरला—हृदय से ! हृदय से ! यदि तू सिद्धार्थ को छोड़ कर मुझको वरे तो मैं माधव की ओर से मन हटा लूँ ।

यशोधरा—स्वीकार है ।

शान्ति—तो इसे भी स्वीकार है ।

यशोधरा—सरला मेरी प्रियतमा बन गई यह जान कर माधव कितने क्रोधित होंगे !

सरला—और तू जो सिद्धार्थ को त्याग कर मुझे मिल गई यह जान कर सिद्धार्थ कैसे प्रसन्न होंगे, क्यों ?

यशोधरा—हाँ ! हाँ ! रे मेरी प्रियतमे ।

शान्ति - अरे वाह री प्यारी जोड़ी !

पुष्प—दो युवती महिलाओं की युगल जोड़ी
चंचल चपल चारु अतिही कुटीले नैन ।
सायक समान धनु नैनकी चढ़ाई है ॥
शिर-बेंदी ऐसी मानो बरछी के नोक बने ।
आँचल की ओढ़नी निशान फहराई है ॥
जहाँ किया धावा, बस बांध ही लिया बीरों को ।
पाँवों की झांझरन से दुन्दुभी बजाई है ॥
आनँद मन हर्षै, यह जोड़ी निरख कर ।
जोबन की फौज लेके मारनेको धाई है ॥

(सहेलियों का गाना)

सब— गाना—

नवेली सहेली चली ।
रस रंग में लुभात, नैन वाण हैं चलात वीरों को करे मात.
ये कली । नवेली० ॥

लपक झपक करत वार, मारत शर बार बार,
करत हृदय छार छार, खूब मनचली ॥ नवेली० ॥

अंक पहिला । दृश्य चौथा ।

महाराज दंडपाणि का गृह ।

(राजा दण्डपाणि और शुद्धोदन के पुरोहित बातें करते आते हैं)

दंडपाणि—कहिये पुरोहित जी, आप को सत्कार में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?

पुरोहित—नहीं राजन् ! ऐसे शुभ कार्य्य से आने में, आप ऐसे नरपति के दर्शन की अभिलाषा और आप के अतिथि-सत्कार का प्रबन्ध फिर भला कष्ट हो सकता है ?

दंडपाणि—पुरोहित जी ! महाराज शुद्धोदन का संदेशा सुनाइये, मेरी उत्कण्ठा मिटाइये ।

पुरोहित—तथास्तु । महाराज शुद्धोदन की प्रबल इच्छा है कि सिद्धार्थकुमार को, जो योग्य अवस्था में पहुंच गये हैं; गृहस्थाश्रम में प्रवेश कराया जाय, किसी सुयोग्य कन्या को उनकी भार्य्या बनाया जाय ।

दंडपाणि—महाराज की इच्छा तो अति उत्तम है ।

पुरोहित—तथास्तु । और इसीलिये महाराज की प्रबल अभिलाषा है कि देवदह और कपिलवस्तु में गूढ़ सम्बंध हो जाये, दोनों देश एक प्राण दो देह कहलाँएँ ।

दंडपाणि—अहा हा ! आप का तात्पर्य मैं समझा, परन्तु

पुरोहित जी ! यदि मेरे कुल के अनुसार सिद्धार्थ कुमार शस्त्र-विद्या की कसौटी में अपने को सफल बनाएं, अपने को एक योद्धा प्रमाणित करके मुझे दिखाएं, तब मुझे यह सम्बन्ध स्वीकार है ।

पुरोहित—तथास्तु । ऐसी इच्छा महाराज शुद्धोदन की भी है । परन्तु देवदहनरेश ! मेरे ध्यान में तो प्रीति के रसायन के आगे लोकाचार, कुलाचार इत्यादि इत्यादि सब आचार गल जाते हैं ।

दंडपाणि—ब्राह्मण देवता ! आप क्या सुनाते हैं ? लोकाचार के हेतु तो आप ब्राह्मण लोग शास्त्र के बड़े बड़े प्रमाण दिखाते हैं ।

पुरोहित—यह तो हम जैसी श्रद्धा यजमान की पाते हैं उसके मानसिक दर्द की वही औषधि बताते हैं। सदाचारी को जैसा रुचता है उसी के अनुसार शास्त्र का वाक्य निकाल कर उसको संतोष दिलाते हैं । अस्तु, आप अपनी इच्छा हम को बताइये जिसमें मैं महाराज को जाकर आप का संदेशा सुनाऊँ ।

दंडपाणि—पुरोहित जी ! आप महाराज शुद्धोदन से कहियेगा कि मैं उनके इच्छानुसार बहुत शीघ्र ही यशोधरा का स्वयम्बर रचाऊँगा और यदि सिद्धार्थकुमार इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए तो उनके ऐसा सुयोग्य दामाद पाकर धन्य धन्य हो जाऊँगा ।

पुरोहित—तथास्तु । परन्तु राजन् ! इस ब्राह्मण का भी कहना याद रखियेगा कि सूर्य्य के आगे तारे अपना प्रभाव

नहीं जमा सकते, सिद्धार्थ कुमार की वीरता के आगे कोई भी महावीर अपनी वीरता से सिद्धार्थकुमार को अधीर नहीं बना सकते।

दंडपाणि—ईश्वर करे आपका आशीर्वाद फले। हमारी मनोवाञ्छा का पुष्प खिले।

पुरोहित—अब यदि आज्ञा हो तो मैं यहाँ से जाऊँ, और आप का संदेश सुनाऊँ।

दंडपाणि—जैसी इच्छा। (दोनों का जाना)

अंक पहिला। दृश्य पांचवाँ।

कपिलवस्तु का कथाभवन।

(वाममार्गी हरिदास आते हैं।)

हरिदास—संसार के परिवर्त्तन ने भारतवर्ष के धर्म को भी विचलित कर दिया। यहाँ के नेताओं ने अपना अपना मत निर्माण करके इधर उधर के धर्म की बातें जोड़ कर समस्त प्रजा में अशान्ति फैला दी। ब्राह्मण अपना कर्म भूल गये। उन्हें घमण्ड की मदिरा ने एक दम पागल बना दिया।

जो उज्ज्वल वस्त्र थे उन पर पड़ी काली निशानी है।
जिसे समझे थे गंगाजल वही मोरी का पानी है॥
भला तृष्णा बुझे क्योंकर अशान्ताग्नि न जल उठे।
बढ़े मझधार में खेवटने जब यह रीत ठानी है॥

बचेंगे हम तभी जब वीर कोई नेक पैदा हो।
दया हो जिसको जीवों पर वतन का अपने शैदा हो॥

[बनारसीदास आते हैं]

बनारसी--क्यों बाबा, आज यह मंडप खाली क्यों दिखलाई देता है?

हरिदास—मुझे तो ज्ञात होता है कि आप के मोक्ष दाता कहीं किसी के गले पर छुरी फेरने गये होंगे। अटांग पटांग यज्ञ की दक्षिणा बताकर अपना घर भरने गये होंगे।

बनारसी—हरिदासजी! ब्राह्मणों की मर्य्यादा में ऐसे प्रतिकूल शब्द नहीं सोहाते हैं। ब्राह्मणों ही के द्वारा तो अपने सारे पाप धुले जाते हैं।

हरिदास—तो वह ब्राह्मण क्या धोबी हुए। अस्तु। [सामने देख कर] वह देखिये! वह सामने से आप के पाप धोने वाले धोबी रामचन्द्र शर्म्मा पधार रहे हैं [रामचन्द्र शर्म्मा कई चेलों के साथ प्रवेश करते हैं।]

रामचन्द्र—[प्रवेश करते करते] ॐ तत् सत् परमात्मने नमः।

बनारसी०—पालागी पण्डित जी!

रामचन्द्र--कल्याण हो। बच्चा कल्याण हो! [रामचन्द्र आसन बिछाकर बैठते हैं, उनके सामने भक्त लोग तरह तरह की भेंट रखते हैं, रामचन्द्र पुस्तक खोल कर कथा आरम्भ करते हैं।]

रामचन्द्र--ॐ परमात्मने नमः।

श्रोता०--ॐ परमात्मने नमः ।

रामचन्द्र—जिज्ञासुगण, गत समय में मैंने कहा था कि समस्त ब्रह्माण्ड सत्य में व्याप्त है। अस्तु सत्य ब्रह्म है और इस हेतु ब्रह्म की संतान अर्थात् ब्राह्मण सब से बढ़कर सत् अर्थात् सब से बड़ा है। इसकी आज्ञा का जो मनुष्य पालन करते हैं वह सर्वव्यापी भगवान् विष्णु के गण समझे जाते हैं और सब से पहिले मोक्षपद पाते हैं।

बनारसी—हरे ! हरे !

रामचन्द्र—निराकार ईश्वर जो है वह साकार रूप से ब्रह्म अर्थात् ब्राह्मण में वास करते हैं इस हेतु ब्राह्मण की पूजा ईश्वर के पूजा के समान है, ब्राह्मण की आज्ञा मानने ही में समस्त संसार का कल्याण है ।

श्रोता—धन्य है। धन्य है।

हरिदास -(स्वगत) इन्हीं अन्धों के कारण हमारा कर्त्तव्य नाश हुआ जाता है। इन्हीं घमंडी ब्राह्मणों के द्वारा हमारा देश रसातल को पहुँचा जाता है।

रामचन्द्र—अस्तु। श्रोता जन, 'यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी' यथा विचार तथा जीवन इन गूढ़ सूत्रों ही द्वारा जो मनुष्य ब्राह्मणों की सेवा में मन लगाते हैं वह धनवान्, संतानवान् तथा आनन्द के पात्र बन जाते हैं।

भक्त मोतीदास—सत्य है। पंडित जी ! अब सेवक का यह प्रश्न है कि भला वह कौन सा उपाय है जिससे मनुष्य इस संसार में सदा आनन्द किया करे, सदा मौज की लहरें लिया करे।

दुर्गादास—भाई मोतीलाल ! मालूम होता है कि आज आप अपनी बुद्धि घर पर रख आये हैं। पण्डित जी तो इतना गला फाड़ फाड़ कर समझा रहे हैं और आप को मालूम पड़ता है कि मानो वह तुम्बड़ी में कंकड़ बजा रहे हैं।

बनारसी—भाई मोतीलाल ! पण्डित जी के कहे हुए उपदेशों को समझ जायँ तो हम भी भारी पण्डितजी कहलायँ। हम लोगों का मुख्य कर्तव्य तो केवल पवित्र शब्दों से कानों को टक्कर लगाना है और इसी के द्वारा स्वर्ग जाना है।

हरिदास—(स्वगत) अरे ! कानों को टक्कर खिला चोट पहुँचाने की आवश्यकता ही क्या है, यदि केवल पण्डितजी के मुख से निकलाही हुआ गोला आकाश में टकरा जाये तो आप लोगों को स्वर्ग मिल जाये।

मोतीलाल—गुरुजी ! सेवक की भी एक शंका का समाधान करिये।

रामचन्द्र—सहर्ष कहिये ?

मोती०—जब मनुष्य को 'यादिशी भावना तादशो सिद्धि' के अनुसार फल मिलता है तो सेवक इधर कई वर्षों से रात दिन अनेक महान् विचार में रहता है फिर भी इसे इसका फल क्यों नहीं मिलता है ?

रामचन्द्र—वह कौन सा विचार है ?

मोती०—पण्डितजी ! दास के मनोमंदिर में उत्तमोत्तम विचारों के अतिरिक्त कोई ओछे विचार नहीं वास करते। मेरी पहिली इच्छा यह है कि मैं इस मंडल के चपरासी का पद छोड़

(पुस्तकालय)

[illegible] कपिलवस्तु का राजकुमार अथवा देवदह नगर का राजा हो जाऊँ।

[illegible] और इसका फल आप इसी जन्म में चाहते हैं, धन्य है!

हरिदास-[स्वगत] क्यों नहीं ? यदि विचार दृढ़ है, तो महाराज शुद्धोदन और दण्डपाणि की वंशावली बदल जायगी। इस मोतीदास को महाराजा बनायेगी।

मोती०--सेवक का दूसरा विचार यह है कि सेवक के पास पत्नीरत्न न होने के कारण पुत्र तथा पुत्री-रत्न नहीं प्राप्त हुये इस हेतु आप के द्वारा पत्नी, पुत्र तथा पुत्री ये इस त्रय-रत्न का वरदान मिले और तीसरा विचार :—

निवारण कष्ट हो मेरा यही इच्छा सदा मन को।
निराली शान हो मेरी बहे दरिया यहाँ धन की॥
बदल कुटिया मेरी उस ठौर पर हो इक महल भारी।
सदा मैं राज-सुख भोगूँ मिले सुन्दर मुझे नारी॥

[इतने में बुद्धि हज्जाम, सरयूराम कितने ही पुरुषों के साथ भजन गाते प्रवेश करते हैं। रामचन्द्र के व्याख्यान में बाधा पड़ती है इसलिये उनके नेत्रों से क्रोधाग्नि निकलने लगती है, सब उठ के खड़े हो जाते हैं।]

मोतीलाल -[बुद्धि से] अरे मुर्ख बुद्धि ! तू एक हज्जाम होकर इस संस्था में क्यों आया ? जहाँ ऐसे महामहोपाध्याय पंडितजी महाराज अपने उपदेश की अमृत-वर्षा कर रहे हैं वहाँ तू एक शूद्र होकर अपने अपवित्र चरण क्यों लाया ?

सरयू—भाई ! जरा विवेक को काम में लाइये, यह संस्था समस्त प्रजा के धर्म का स्थान है, यहां धर्म पर विचार करने के लिये सब को अधिकार समान है, फिर हमें इस भांति गालियां मत सुनाइये ।

रामचन्द्र—[भेट चढ़ी हुई वस्तुओं का गट्ठर बांधते हुए] मोतीलालजी ! आप इन शूद्रों के साथ बकवाद न करें। शूद्र होकर जो पंडित के कर्म से उपदेश करने का पाप मस्तक पर लिये घूम रहा है उसके साथ वार्तालाप न करिये । इसकी केवल छाया मात्र से आप अशुद्ध हो गये, इस हेतु इस अशुद्धि को दूर करने के लिये, इस पाप का प्रायश्चित्त करने के निमित्त शीघ्र ही रोहिणी में स्नान करने को चलिये ।

हरिदास—(स्वयं) प्रभु, आप देख रहे हैं, इन पंडितजी के कारण—इन घमंडी ब्राह्मणों के कारण—हम रसातल को चले जारहे हैं। इन मद में मतवाले नाविकों के कारण हम मझधार में डूबे जा रहे हैं ।

न शक्ति बुद्धि में बाकी, न विद्या की प्रणाली है ।
यहां तो यह मसल है, हर तरफ मैदान खाली है ॥
बहा जाता है खुद नाविक, तो फिर हमको बचावे क्या ?
करेगा कौन रक्षा पुष्प की, जब मूर्ख माली है ॥

बुद्धि—[रामचन्द्र से] पंडितजी ! क्षमा करिये, यदि मेरे आने से आप के सत्कार में विघ्न पड़ा है, तो मैं यहां से तत्काल चला जाता हूं अपनी इस भजन-मंडली को कहीं और जाके जमाता हूं ।

रामचन्द्र—[क्रोध से दाँत पीस कर]अहा ! चाण्डाल ! क्या तू मेरे ऊपर उपकार जताता है, एक हज्जाम मेरे ऐसे उच्च-कोटि में जन्म लेने वाले ब्राह्मण पर उदारता दिखाता है ! नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता । अस्तु जिज्ञासुगण, यजमान-गण, शिष्यगण, उपशिष्यगण, बस सब कोई प्रयाण करिये, सशरीर, सहसा तथा सवेग प्रयाण करिये । संसार को दर्शा दीजिये कि ब्राह्मण लोग इन शूद्रों से दस सहस्र गुना उत्तम, पवित्रतम और शुद्धतम हैं । और ये तो केवल शूद्र अधम हैं ।

[सबका एक साथ चले जाना ।]

बुद्धि—हे प्रभो ! क्या हमने ऐसे तुच्छ वंश में जन्म लिया है कि हमें आप का पवित्र नाम लेने का भी अधिकार नहीं ? क्या वास्तव में हमारी सेवा आपको स्वीकार नहीं ?

गाना ।

तुमको त्यागि किन्हें सुमिरें ।
भक्ति-नगर के हैं हम बासी, प्रेमी खोज करें ।
बड़ी कठिनतासे पहिचाने, अब कैसे बिसरें ॥ तुमको०-
तापर ये संताप मिलत हैं, कैसे धीर धरें ॥
अपनाओ चरणो में रखकर आनँद में विचरे । तुमको०-

अंक पहिला । दृश्य छठवाँ ।

(यशोधरा का स्वयंवर)

(सभा-मंडप भले भांति सजा है, देवदत्त इत्यादि एक ओर तथा सिद्धार्थ कुमार पुरोहित के साथ दूसरी ओर बैठे

हैं, बीचमें दंडपाणि महाराज का आसन है जिसपर वह स्वयं विराजमान हैं। मंडप के बीच में एक मछली लटक रही है, उसी के नीचे तेल का एक कटोरा भरा रखा है, यशोधरा एक ओर बरामदे में हाथ में जयमाल लिये सहेलियों के साथ बैठी है, सहेलियाँ मंगल-गीत गाती हैं।)

गाना।

मंगल सब सज्यो साज, शुभ दिन घड़ि शुभ समाज।
शोभा बरणी न जात, निरख मन लुभाये॥ मंगल०-
सोहत विख्यात भूप, मोहत अपरूप रूप।
रचना-मंडप अनूप, सुर नर सब आये॥ मङ्गल०-

मंत्री—महान् महिपालो! आप ने स्वयम्बर के निमंत्रण को स्वीकार यहाँ पधार कर, महाराज दण्डपाणि को कृतार्थ किया, महाराज का मान बढ़ाया। अब आप लोगों में से जो योद्धा इस मछली की परछाईं को तेल में देख कर मछली को निशाना लगावेंगे, वही राजकन्या यशोधरा देवी का पाणिग्रहण करने पावेंगे। इस हेतु आप महानुभावों से यही प्रार्थना है कि अपना अपना कौशल दिखलाइये, कन्या का भार जो पृथ्वी के भार से भी अधिक भारी है छुड़ा कर महाराज को आभारी बनाइये।

नर पतिगण! कुशलता अब अपनी दिखलाइये।
हार यदि न पाइये, तो हार आप पाइये॥

देवदत्त—[पुरोहित से] क्यों पुरोहित जी! क्या सिद्धार्थ कुमार भी आज अपनी वीरता दिखलाने आये हैं? अपने को पराक्रमी सिद्ध करने की अभिलाषा मन में लाये हैं।

पुरो०-अवश्य। जब वह क्षत्रिय हैं तो उनको अवश्य ऐसा करना पड़ेगा, यदि वह आदित्य हैं तो अवश्य उन्हें मेघों को हटा के निकलना पड़ेगा।

देवदत्त-परन्तु मुझे संदेह है कि जो सिद्धार्थ एक चींटीको कष्ट होते देख सहम जाते हैं वह भला क्योंकर अपना पराक्रम यहाँ दिखा सकेंगे। क्या वे ऐसे योद्धावों के बीच में डर न जायेंगे ?

सिद्धार्थ-भाई देवदत्त ! वीरता वीरता के स्थान पर दिखाई जाती है, वीरता उन अबोल जानवरों पर जो हमारी दया के आश्रित हैं नहीं दिखाई जाती।

क्षत्रिय का धर्म युद्धमें मैदान मारना है।
आश्रित प्रजा के यावत् कष्टों को टारना है।
विख्यात नहीं कोई निर्बल के सताने में।
नहिं बीरता है हस्ती चींटी को मिटाने में।
है शूर वही जो कि मैदां में पुकारे।
अपने से बढ़के वीरको सौबार पछाड़े॥

देवदत्त—सिद्धार्थ ! मुँह से बक देना तो बहुत आसान है, परन्तु वीरता दिखाना लोहे के चने चबाने के समान है।

शुभ वीरता के नामको मुशकिल पड़ी न होती।
भूषण है चूड़ियों का, ऐसी घड़ी न होती॥
जैसे पराक्रमी हम, वैसे ही तुम भी होते।
तलवार की जगह पर छोटी छड़ी न होती॥

पुरो०—देवदत्त जी ! सिद्धार्थ कुमार वीर हैं अथवा कायर, इन बातों से आप क्यों घबराने लगे ? वह पराक्रम में

सफलतापूर्वक फलीभूत होंगे या नहीं इन विचारों से आप क्यों तलमलाने लगे ?

जब समय आजायेगा, तब आप देखा जायेगा ।
वीर जो है वीरता द्वारा स्वयं प्रगटायेगा ॥

दंडपाणि—राजकुमारो ! इस वादाविवाद को मिटाइये और इस सभा-मंडप में मछली वेधने की परीक्षा में कौन उत्तीर्ण होता है इसे दिखलाइये ।

पुरोहित—चलिये देवदत्तजी, आगे बढ़िये और उस मछली को निशाना बनाइये ।

देवदत्त—हाँ हाँ मैं अभी जाता हूँ और निशाना साध कर मछली को अभी गिराता हूँ ।

पुरोहित—परन्तु इतना ध्यान रहे कि निशाना मछली को लगाना है न कि वृक्ष को ।

देवदत्त—मुझे भली भांति ज्ञात है ।

[देवदत्त तीर छोड़ता है निशाना चूक जाता है
सब सभा हँसने लगती है]

देवदत्त—अह जरा मैं चूक गया, यदि मैं एक वार और आज्ञा पाऊँ तो इस मछली को अवश्य वेध गिराऊँ ।

पुरोहित—अब आप बैठ जाइये अधिक कष्ट न उठाइये [सिद्धार्थ कुमार से] आइये सिद्धार्थ कुमार आइये और अपना पराक्रम दिखलाइये ।

[सिद्धार्थ कुमार मछली को निशाना बनाते हैं सब
लोग वाह वाह करते हैं]

सब—धन्य है, धन्य है, सिद्धार्थ कुमार के पराक्रम को धन्य है !

देवदत्त-[क्रोधित होकर] यह धन्य धन्य की क्यों चिल, पों लगाई गई, इस ज़रा सी बात में ऐसी कौन सी बड़ाई हुई । यह सरासर एक अपमान है, यहाँ से अब चले ही जाने में कल्याण है [देवदत्त जाता है ।]

पुरोहित-[हँस कर] हाँ ! हाँ ! हारे जाते हैं फिर भी दम मारे जाते हैं । ऐसे कायर बहुत कम देखने में आते हैं [दंड-पाणि से] कहिये महाराज ! अब आप की इच्छा पूरी हुई ?

दंडपाणि-पुरोहित जी ! सम्पूर्ण रूप से इच्छा पूर्ण हुई । मेरी यशोधरा के सुख का सूर्य्य आज से उदय हुआ, सिद्धार्थ कुमार के ऐसा सर्वगुण सम्पन्न वीर जामाता पाकर आज मैं गद्गद् हुआ ! [यशोधरा को बुला कर] बेटी यशोधरा आओ, देवता समान सिद्धार्थ कुमार के गले में जयमाल पहिनाओ, [सिद्धार्थ से] सिद्धार्थ कुमार ! मेरी पुत्री को दासी रूप से अपनाइये । (यशोधरा लजाती लजाती सखियों के साथ आती है, शान्ति उसे बीच में छेड़ती है ।]

शान्ति-(धीरे से यशोधरा से) देखना कहीं हमें भूल न जाना, हमें दूध की मक्खी की भाँति न फिकवाना [यशोधरा सिद्धार्थ के गले में माला डालती है, बालायें फूल बरसाती और आनन्द-गीत गाती हैं ।]

गाना ।

आओ सहेलियाँ, मन हरखायें, पुष्प लायें—
आनँद मन से सँवारें, दूल्हा दूल्हन पर वारें—

प्रसन्नता से ये मिलाप के पधारे दिन
दया प्रभु की है कि चमके हैं ये हमारे दिन
यही है प्रार्थना अब दासियों की ऐ आनन्द
सहस्र साल प्रफुल्लित हो ये गुज़ारें दिन । आश्रो०—

❀ अंक पहिला समाप्त ❀

अंक दूसरा । दृश्य पहिला ।

महल ।

[शुद्धोदन तथा उनके मंत्री आते हैं]

शुद्धोदन–मंत्री जी ! आज मेरा हृदय हर्ष से फूला नहीं समाता है, आज मेरे हृदय का सागर हर्षरूपी ज्वारभाटा के आने से छलकता जाता है । मेरे संन्यास-प्रिय पुत्र ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया । यह देखकर हृदय गद्गद् हुआ जाता है । पर ऐसे पत्नी के साथ तनिक भी असावधानी करने से उसे पुनः जंगल की हवा लग जाने का डर है । इस हेतु सिद्धार्थ के लिये एक अनुपम और मनोहर भवन बनवाने का प्रबन्ध कीजिये, और उसके चारों तरफ सुख और आनन्द के अतिरिक्त कोई त्रासदायक दृश्य न रहने दीजिये ।

चिन्ता न हो किसी के मुख वो शरीर पर ।
कोई निकट न जावे जो हो अधीर नर ॥
आनन्द प्रेम राग में जीवन व्यतीत हो ।
शृङ्गार भरे शस्त्र हों रसप्रेम भरे शर ॥
सिद्धार्थ मेरा इस तरह जीवन बितायेगा ।
निश्चय है योग शब्द भी मुख पर न लायेगा ॥

मंत्री–नरनाथ ! आपके आज्ञानुसार सब कार्य सम्पादन किया जावेगा ।

शुद्धो०–तो इस कार्य को शीघ्र प्रारम्भ कर दीजिये, देर न कीजिये । (दोनों जाते हैं)

(सिद्धार्थ तथा यशोधरा आते हैं)

सिद्धार्थ–नहीं ! मेरे हृदय की अधिकारिणी, ऐसा नहीं है, मन को धीरज दो, अपने को शान्त करो ।

यशोधरा–परन्तु नाथ ! आप क्यों नहीं बताते, अपने उस भयानक चीत्कार का भेद मुझे क्यों नहीं सुनाते ?

सिद्धार्थ—कमलनयने ! भला तुम से क्या कुछ छिपाना है, वह भेद ही क्या है जिसका तत्व तुमको समझाना है ।

यशोधरा–तो नाथ ! आप प्रतिदिवस रात्रि को निन्द्रावस्था में क्या बका करते हैं, कहाँ जाने के हेतु कहा करते हैं ? सुप्तावस्था में आपके मुख से वह निकले हुए हृदय-विदारक शब्द मेरे हृदय को चूरचूर किये डालते हैं, मुझे पागलसी बना देते हैं । मेरे प्राणधन ! अपनी इस हतभागिनी यशोधरा के जलते हुए हृदय पर प्रेम की अमृतधारा बरसाइये, अपनी इस दासी को अपने चरणोंके पास से न हटाइये ।

सिद्धार्थ–हृदयेश्वरि ! शान्त हो ! ऐसे अमंगल सूचक शब्द मुख से न निकालो, सिद्धार्थ तुम्हारा है, वह तुम्हें छोड़कर भला कहाँ जायगा ? ऐसी दूषित कल्पना मनमें न लाओ, आओ इस समय खिली हुई चांदनी में जरा बैठकर जी बहलावें, प्रकृत की अनुपम शोभा में आनन्द मनावें ।

[सिद्धार्थ यशोधरा को हृदय से लगाते हैं]

यशोधरा—प्राणनाथ ! दासी आपके साथ महा भयानक बनमें भी वही आनन्द पा सकती है जो इस राजमहल में ।

गाना ।

प्रीतम नाथ प्राणधार, तुम हो मेरे जग आधार ।
सेवा मैं सदा करूँ, इच्छा यही मनमें ॥ प्रीतम०—

चाहे रहूँ राजगृह, चाहे बसूँ पर्ण कुटि,
चाहे हो देश कोई, चाहे हूँ बन में ॥ प्रीतम०—

(शान्ति आती है)

शान्ति—बहिन यशोधरा ! जल्दी चलिये माता गौतमी आपको बुलाती हैं, दुर्गादेवी की पूजा करने चलना है इस हेतु शीघ्रता कीजिये ।

सिद्धार्थ—प्रिये जाओ ! दुर्गादेवी की पूजाकर आओ ।

यशोधरा—जो आज्ञा नाथ ! [जाती है]

सिद्धार्थ—बहका दिया ! एक भोली कोमल हृदय बालिका को अपना असली रूप छिपाकर बहका दिया । परन्तु क्या करूं मुझे ऐसा करना पड़ा, यदि ऐसा न करता तो वह अधीर हो जाती । मेरी पुजारिन मेरे प्रेम में मेरे वियोग की बात सुनकर बावली बन जाती । सिद्धार्थ ! समस्त संसार के जीवों के प्रति जो कर्त्तव्य है उसको बिसार कर, कब तक गृहस्थाश्रम के झंझटों में फँसे रहोगे ? यह जो दुःखित जगत् का हृदयविदारक कोलाहल है, उसे कब तक अनसुना करके प्रेम-रूपी डाट से अपने कानों को बंद किये रहोगे ? स्वार्थ के अग्नि-कुण्ड में जो अनेक आशा भरी आहुतियाँ हुई जारही हैं, जो राग द्वेश और तृष्णा की भयंकर नदियों में अनाथाओं तथा अबलाओं की लाशें बही जा रही हैं उन्हें कबतक देखा करोगे ? नहीं ! नहीं ! हे दुःखी जगत् ! तेरा दुःख नहीं देख सकता । सिद्धार्थ उठ ! इस भयंकर प्रलय से संसार को बचा । राग रंग में अपने को न उलझा । जगत् के छुटकारे का कुछ रास्ता बना [विचार कर] तो क्या मुझे यशोधरा जाने देगी ! नहीं ! नहीं ! वह

जब तक जीवित है मुझे कभी नहीं जाने देगी । तो क्या करूँ ? वही ! धोखा ! सबको धोखा देना होगा, दुःखी संसार की खातिर इस राज्य को ! इस वैभवको, माता पिताको, अपने प्राणों से प्यारी यशोधरा को तजकर संसार, तेरे लिये सङ्कल्प करना पड़ेगा, तेरे सिरपर की फैली हुई अशान्ति का अन्धकार हरना पड़ेगा ।

गाना ।

उड़जा, उड़जा, जगत अशान्ति ! परिपूरण हो उज्ज्वल कान्ति ।
भ्रमर समान बहक मत चहुं दिश, थिर मनमें रख शान्ति ॥
॥ उड़जा० ॥

अङ्क दूसरा । दृश्य दूसरा ।

[कपिलवस्तु के किले का एक बाहरी तालाब]

[सरोवर में बहुत से हंस जलक्रीड़ा कर रहे हैं, इतने में एक तीर सनसनाता हुआ आकर एक हंस को लगता है वह तड़फड़ा जाता है । सिद्धार्थ आते हैं और उस हंस को सरोवर से उठा कर उसका तीर निकाल कर, उसके घाव को पानी से धोते हैं । इतने में देवदत्त अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हाथ में कमान लिये हुए आता है ।]

देवदत्त—सिद्धार्थ ! मेरे शिकार को मुक्त कर दो, यह हंस मेरे तीर से घायल हुआ है, इसका मैं ही अधिकारी हूँ ।

सिद्धार्थ—देवदत्त ! देखो तो तुम्हारे शस्त्र के लग जाने से यह कोमल हंस का बच्चा कैसा तड़प रहा है । इसे

ऐसा कठिन घाव लगा है कि इसका प्राणान्त होने में कुछ भी विलम्ब नहीं है। इसके दोनों नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है, इसका पुष्प ऐसा कोमल शरीर डर से थरथरा रहा है। बिचारा, जीवन की आशा और मृत्यु के भय से बीच ही में डगमगा रहा है। इस पर तनिक दया लाओ। ईश्वर के लिये इसे अब अधिक न सताओ, अपने कठोर हृदय में करुणा लाकर दयावान् कहलाओ।

मज़ा तुमको मिलेगा क्या भला इसके सताने में।
निशानी क्या तुम्हें मिल जायगी इसके मिटाने में!॥
निशाना प्रेम पर रक्खो तो भूषित हो ज़माने में।
बनोगे वीर असली घाव पर पट्टी लगाने में॥
तुम्हारे तरकशों के तीर जो आंखें दिखाते हैं।
हृदय इसका तड़पता है बिचारे को रुलाते हैं॥

देवदत्त—कुमार! जब एक जख्मी पक्षी को देख कर तुम बच्चों की तरह आंखों में आंसू भर लाते हो, जब तरकश के इन छोटे छोटे तीरों को देख कर भय खाते हो, तो भला रण-स्थलमें चमचमाती हुई तलवार कटार से शत्रुओं के शरीर से रक्त की धारा बहते देख कैसे सहन कर सकोगे? मुझे विश्वास है कि उस समय एक औरत की तरह रो कर भाग जाओगे। और क्षत्रिय नाम को भारी कलंक लगाओगे।

सिद्धार्थ—यदि क्षात्र धर्म निर्दोष जीवन को नाश करना है, खिलती कलियोंको तोड़ कर फेकना है, परमात्मा की अनमोल सृष्टि को भस्म करना है, तो इसे मैं कभी नहीं स्वीकार कर सकता। पानी की लकीर की तरह जो क्षणभंगुर

सिद्धार्थ—तो उसी दया के एक टुकड़े को तुम इस बिचारे भोले भाले पक्षी पर डालो, इसे जीवन-दान देकर इसकी दुराशा के उपवन में अभय की सुरीली तानवाले पक्षी पालो ।

देवदत्त—तुम ऐसे न मानोगे तो मैं यह पक्षी तुमसे छीनता हूँ । [देवदत्त पक्षी छीनना चाहता है, महाराज शुद्धोदन केशवराम इत्यादि आते हैं]

शुद्धोदन-कहो देवदत्त ! आज यह कैसा द्वन्द्व-युद्ध ठाना ।

देवदत्त—देखिये न महाराज ! कुमार ने आज खोटा हठ ठाना है । जब यह हंस मेरे तीर से घायल हुआ है तो मेरे शिकार पर हाथ डालना सरासर नादानी है ।

शुद्धोदन—देवदत्त के तीर से हंस घायल हुआ है तो कुमार पर उसका कोई हक नहीं ।

सिद्धार्थ-पिता जी ! यह आप क्या आज्ञा सुनाते हैं, देवदत्त ने हंस मारा, परन्तु मैंने इसे उबारा; अब यह बिचारा निर्दोष पक्षी आप के पास अपने प्राण की याचना कर रहा है । आप से न्याय की भिक्षा मांग रहा है तो आपही बताइये दोनों में से किसका हक़ है, बचाने वाले का या मारने वाले का ?

देवदत्त—महाराज, शिकार में बचाने वाले से मारनेवाले का हक ज्यादा है, जब मारने ही वाला न हो तो बचाने वाला किसको बचावेगा । परन्तु यदि बचानेवाला न हो तो मारने वाला सैकड़ों को मार गिरावेगा, इस लिये तीरवाले का शिकार है, सदा का ऐसा ही कायदा है ।

केशवराम—महाराज, न्याय करने के पहिले यह तो विचारिये

कि इस प्रश्न का आधार आप के ऊपर नहीं वरन् इस अबोल भोले पक्षी की दशा के ऊपर है। इसका हृदय इस समय दया, उदारता, प्रेम के लिये बिलख रहा है। इसका अन्तःकरण इन ईश्वरीय गुणों को पाने के लिये तड़प रहा है, इस लिये इस हंसराज के ऊपर सिद्धार्थकुमार का पूर्ण अधिकार है, मेरा तो यही तुच्छ विचार है।

देवदत्त—महाराज! इस प्रश्न का निर्णय करना क्षत्रियों का काम है, सूद ब्याज चलाने वाले वैश्य, क्षात्रधर्म के सम्बंध से बिलकुल अनजान हैं।

केशव—देवदत्त जी! तुम्हारे रणक्षेत्र का नियम कुछ विश्व के नियमसे अलग नहीं है। जब परमात्मा भी प्रेम के कारण वश में हो जाते हैं जब इसी प्रेम के गुण में बंध कर अनेक अनेक रूप धारण करके अपने प्रेमियों की आशा पूरी करते हैं, जब अनन्त काल से प्राणिमात्र भर के सारी प्रवृत्तियों में केवल दिव्य प्रेमको सब से ऊँचे आसन पर बिठाते हैं तो, फिर इस अबोल पक्षी को क्यों निराश किया जाय, क्यों प्रेम से बंचित कर इसका सर्वनाश किया जाय।

प्रेमरूप सर्वत्र फैल कर विश्वरूप कहलाता है।
प्रेम सर्वप्रिय प्रेम न्यायप्रिय प्रेम प्राण बन जाता है॥
प्रेम करो अरु प्रेम गहो सब धर्म यही बतलाता है।
अन्त समय में यही प्रेम उस प्रेमी तक पहुंचाता है॥
तिनअंकी अक्षर त्रिनेत्र के पास सदा हैं झूम रहा।
जो इसका पालन करता है उसका जग पग चूम रहा॥

देवदत्त—यदि तमाम ज़माने में प्रेम ही प्रेम दिखाया जाय,

एक खूनी को दया दिखाकर उसका प्राण बचाया जाय तो सारा राज्य डाकुओं और खूनियों से भर जाय और रात दिन गरीबों के गले काट काट कर लहू की नदियाँ बहाई जायँ—

प्रेम की पोथी बनी है जग-अनाड़ी के लिये ।
प्रेम का है शब्द नारी औ चुहाड़ी के लिये ॥
हो शिकारी न्याय जब तब प्रेम का क्या काम है ।
ऐसे बेमतलब के मतलब को सहस्र प्रणाम है ॥

केशवराम—मैं नहीं समझता कि इस पक्षी ने कौन सा खून किया जो इसे आपने तीर का निशाना बनाया है। इस अबोल हंसने इस राज्य में कौनसी गड़बड़ मचाई जिससे आपने इसे ऐसी सांघातिक चोट पहुँचाई, क्योंइसे आप दण्ड देना चाहते हैं, इस बिचारे पर डाकेज़नीं का इलज़ाम लगा कर अपने उदर रूपी कारागृह में बन्द करना चाहते हैं ?

देवदत्त—चुप रहो ! चुप रहो !

तुम्हारी बात जो सुन कर छिपें हम जा मकानों में ।
हमारी न्याय की पुस्तक फिरे मारी दुकानों में ॥
नहीं वीरत्व का एक शब्द भी पाता ज़बानों में।
लगे हैं जंग सारे तीर तरकश वो कमानों में ॥

शुद्धोदन—बस इस व्यर्थ के वादविवाद से हाथ उठाओ। सिद्धार्थ ! आखेट के न्याय के अनुसार हंस देवदत्त का है इसे देकर यह सब बखेड़ा हटाओ। [शुद्धोदन केशवराम जाते हैं]

देवदत्त—लाओ ! सिद्धार्थ कुमार ! अब आगा पीछा मत दिखाओ [सिद्धार्थ से हंसलेकर उसकी गरदन मरोड़ता है]

तुम्हारे प्राण प्यारे को लहू में मैं डुबाता हूँ !
जिसे तुम प्यार करते थे निशाँ उसका मिटाता हूँ ॥

(मार कर हँसता हँसता चला जाता है)

सिद्धार्थ-चाण्डाल, बधक ! अपने इस अमानुषी कर्तव्य पर डींगें मारता चला गया। एक अनाथ निःसहाय पक्षी पर छुरी फेर छाती फुलाता चला गया। न बचा सका, एक पक्षी तक को न बचा सका। मनुष्य, तुम इतने गये बीते हो जो अपना ज़ोर एक पक्षी पर दिखाते हो। अपने को बलवान् कहते हो ! निर्बल पर ज़ोर आजमाते हो। धिक्कार, है तुमको, धिक्कार है तुम्हारी स्थिति को। धिक्कार है तुम्हारे बल को। सिद्धार्थ ! अब भी जाग ! संसार के निष्ठुर सम्बन्ध को त्याग, हृदय की वीणा पर प्रेम के राग सुना, यदि हो सके तो संसार को, संसार के प्राणिमात्र को कर्तव्य शील कर्मयोगी बना।

कर्तव्य-तंत्र में अब सुर तान मिले सारे।
तब हाथ मोड़ पै हो औ प्रेमराग मारे ॥
हिंसा का नाश होवे, जीवन के हो सहारे।
प्रेमार्थ से छुटें अब बस प्रेम के फुहारे ॥

गाना ।

मत मारी है यह सारी, जग की कौन व्यथा समझाये।
उपकार करन को आये, अपकार में मन ललचाये ॥
अन्धे को कौन सुझाये, दे नेत्र मार्ग बतलाये।
जग स्वारथ मय बन रहा, कर हिंसा व्यापार ॥
औरन को उपदेश दें, करते अत्याचार ॥ मत मारी०-

(सिद्धार्थ जाते हैं।)

अंक दूसरा । दृश्य तीसरा ।

[कपिलवस्तु का शिवमंदिर]

[कपिलवस्तु के भक्तजन शिव की पूजा और स्तुति करते हैं ।]

गाना ।

शिव शम्भो, नटवर-गिरिजापति, कैलाशी मम उरवासी ।
दुखभंजन, तन-मन, जनरंजन, भक्तन के हो सुखराशी । शिव०-
ब्रह्माण्ड तेरी आरती निज भानु दीपक से करे ।
जग प्रगट होकर भारती आनंद निसदिन मन धरे ॥ दुखभंजन०-

[आरती पूरी कर प्रदक्षिणा करते हुए सब जाते हैं ।
देवदत्त आता है]

देवदत्त—मारा, आखिर सिद्धार्थ की इच्छा और आशा पर अपनी अभिलाषा का बाण मारा । परन्तु केशवराम मेरे बीच में बहुत टाँगें अड़ाता है, मेरे किये हुए उपकारों का ऐसा ही बदला चुकाता है । बहादुर देवदत्त के बीच आने की भला किसमें शक्ति है ? कपिलवस्तु की तमाम राज-सत्ता देवदत्त के बाहुबल के अधीन है । देवदत्त इस समय भी अपने जोर से तमाम संसार को जीतने में स्वाधीन है । इसी केशव राम की लड़की सरला के लिये माधव ऐसा सुयोग्य लड़का मैंने ठीक किया, और उसका बदला मुझे इस चाण्डाल केशव ने ऐसा दिया ! ठहर जा ! न घबरा [सामने सरला को आते देख कर] उस चाण्डाल की पुत्री इसी तरफ आ रही है, जरा छिपके देखूं क्या रंग ला रही है । (देवदत्त छिप जाता है, सरला आती है ।)

सरला—अहा! जिस प्रकार शीतल जल से भरा हुआ मानससरोवर, दूध की धारा के समान बहते हुए झरने, पहाड़ों से उछलती कूदती नृत्य करती हुई नदियाँ, बर्फ से लदे हुए आसमान छूनेवाले पर्वतों की चोटियाँ, मनोहर सुगन्धित पुष्पों से भरे हुए उपवन देखने से मन प्रसन्न होता है, उससे कहीं अधिक इष्टदेव के दर्शन करने से हृदय धन्य धन्य होता है।

गाना

दिव्य कान्ति! चहुँदिशि व्यापक शान्ति॥
आराध्य-देवता के दर्शन से, है मिटती सब भ्रान्ति॥

(माधव आता है)

माधव—जिस प्रकार चन्द्रमा को देखने से चकोर, सूर्य को देखने से कमलिनी आनन्दमय होकर झूमने लगती है, उसी प्रकार माधव को देखने से यह सरला शतदलिनी भी प्रफुल्लित हो अपने हृदयाराध्य का पग चूमने लगती है।

सरला—हैं, आप यहाँ कहाँ? यह चोरी से यहाँ आना किसने सिखाया?

माधव—जिसने अपने चन्द्रमुखका चकोर बनाया उसीने मुझे यह चोरी करना सिखाया।

सरला—अहा! अब तो बहुत बातें बनाना आगया है।

माधव—इसमें आश्चर्य्य कैसा! जो प्रेम की पठाशाला में पढ़ने जाता है, वह वहाँ से यही सीख कर आता है, परन्तु यहाँ तो—

नयनों से नयन मिलते ही अभ्यास छुटगया है।
याँ काफिला ही सारा दमभर में लुटगया है॥

सरला—अच्छा अच्छा बहुत बातें न बनाइये और जो मैं पूछती हूँ उसे बताइये ।

माधव—हाँ हाँ ! सुनाइये—सुनाइये ।

सरला—यही कि जो आँखें अभी हैं वह क्या विवाह के पश्चात् भी रहेंगी ? यह दासी क्या सदा एक समानआपकी प्रेमधारा में पैरने का साहस करेगी ?

माधव—यह तो उस धारा के नाविक से पूछिये। परन्तु, मैं तो इतना जानता हूँ कि प्यारी सरला के पाने से निर्धन माधव धनवान् सुरेश हो जायगा। विना प्राण का माधव अमृत प्याला पीकर अमर महेश हो जायगा ।

सरला—और हृदयहीन माधव कमलेश हो जायँगे। क्यों ठीक है न ?

माधव—सब ठीक है। परन्तु मुझे वह अपना स्नेह-गीत सुनाती जाओ, वह प्रेमपद गाती जाओ ।

सरला—नहीं ऐसा कदापि नहीं हो सकता ।

माधव—तो फिर माधव का चेहरा सूख जायगा, वह भला तुम से कैसे देखा जायगा !

सरला—शिव शिव स्त्री-हठ तो केवल कहने की बात है परन्तु पुरुष-हठ में तो एक भारी करामात है। अच्छा सुनिये, मन को दुःखित न बनाइये ।

माधव—सरला देवी के भक्त कर्णदेव ! जरा आकाश-वाणी पर ध्यान लगाइये—

गाना ।

सरलाः—

प्रेम की मुरली आज बाजी ।
सब रंग सङ्गले साजी ॥ प्रेम ॥
प्रेम ही राधा प्रेम कृष्ण है, प्रेम ही गोपी नार ।
प्रेम गोप है, प्रेम कुंज है, प्रेम व्याप्त संसार ॥ आज०-

(देवदत्त प्रगट होता है)

देवदत्त--देव-मंदिर और एकान्त ! माधव! बड़ी लज्जा की बात है। आज कल की छोकड़ियों की तो ऐसी ही घात है। परन्तु तुम्हारे ऐसे विद्वान् का विवाह होने से पहिले इस प्रकार मिलना, यह तो धर्म पर भारी आघात है।

[लज्जा से सरला भाग जाती है। माधव भी लज्जित होता है]

माधव-भाई क्षमा कीजिये ! सरला पूजन को आई थी, अचानक मिलाप हो गया। पहिले कोई एकान्त में मिलने की बात न थी, उस बिचारी की कोई घात न थी।

देवदत्त--अस्तु,कोई चिन्ता नहीं ! परन्तु माधव मुझे तुमसे कुछ बातें कहना है।

माधव—भाई देवदत्त ! आज्ञा कीजिये।

देवदत्त—तुम्हे यह तो भले प्रकार मालूम होगा कि आज तक मैंने तुमपर छोटे भाई की तरह नेह किया है।

माधव—यह क्या कहते हो भाई साहब, आजतक आपने निराश्रयको आश्रय दिया अन्नरहित को अन्न दिया है, विद्या दान दिलाया और अन्त में मेरा जीवन सुखमय बनाने के लिये सरला ऐसी सदगुणी वाला से सम्बन्ध कर दिया। इतने

उपकार पर भी यदि मैं आपकी तथा आपकी नेकियों को भूल जाँऊ तो भला सन्सार में क्या मुहँ दिखाऊँगा।

भरे संसार में मै कीट सदृश हो भटकता था।
नहीं आश्रय था कोई एक दाने को तरसता था॥
तुम्हारे ही दयाने आज यह हालत बनाई है।
उसी का तत्व है के विश्व से आंखे लड़ाई है॥

देवदत्त—अजो उन सब बातों को दुहराने से क्या लाभ, वह तो मेरा धर्म था जो कर दिखाया अब यदि तुम्हें मेरी नेकियों का बदला चुकाना है तो मेरा कहा मानो, जो मैं कहता हूँ उसे करने में आगा पीछा न ठानो।

माधव—क्या बात है? सुनाइये, सुनाइये, विलम्ब न कीजिये, बताइये।

देवदत्त—कई विशेष कारणों से मैं तुम्हारा सम्बन्ध केशव राम तथा उनके कुटुम्बसे नहीं करना चाहता, कारण इसमें अपनी मर्यादा की हानि है, इसलिये इस आत्मीयता को तोड़ने का मुझे ध्यान है।

माधव—भाई साहब। क्षमा कीजियेगा, जिस केशवराम की चारों ओर प्रसंशा हो रही है, उनसे सम्बन्ध न किया जाय? जिस सरला ने मेरे हृदय में स्वर्ग का सुख स्थापित कर दिया है उसे त्याग दिया जाय, क्यों? किस लिये? क्या उनमें कोई दोष है? कोई कलंक है?

देवदत्त—दोष भी ऐसा जो बताया नहीं जा सकता, कलंक भी ऐसा जो मुख से सुनाया नहीं जा सकता, और फिर पुरुषों

के लिये एक नहीं दस स्त्रियाँ तैयार हैं। तुम सरला की इतनी प्रशंसा करते हो लेकिन सरला की ऐसी हज़ारों लड़कियाँ तुम्हारे ऊपर प्राण निछावर करने को उद्यत हैं।

माधव—नहीं भाई ! सरला को छोड़ मुझे और किसी स्त्री से कोई सम्बन्ध नहीं है। सरला मेरा जीवन-प्राण है, मुझ रंक की लक्ष्मी समान है। मैं आपको हाथ जोड़ता हूँ, मुझे सरला से न छुड़ाइये जहाँ आज तक इतनी कृपा की वहाँ यह कृपा भी करने से मुख न फिराईये।

गाना।

प्रेम बना रसधार प्रणयसे
सिन्धु सरित-सम हृदय मिला है,
चितचकोर जस चन्द्रकला है,
ना विलगाओ प्राण हृदय से ॥
कलेजे में मेरे तुम कामशर को और रहने दो।
मिले सुख जिस जगह मन को उसे उस ठौर रहने दो ॥
हवा खालें ज़रा हम और भी इस प्रेम-उपवन में।
बही है नाव अब जिस ओर उसही ओर बहने दो ॥
सिन्धु सरित० ॥

देवदत्त—माधव ! मेरे उपकारों का यह बदला ! मेरी मिहरबानियों का यह नतीजा ! तुम्हारे पिता की मृत्यु के पश्चात् तुमको किसने पाला ? तुम्हें किसने सम्हाला ? तुमको राजभवन देश देशान्तर में किसने महा पुरुष बना डाला ? तुम्हें किसने विद्यादान दिलाया ! इस पदवी पर तुम्हें कौन लाया ? अब उसका तुम यही ऋण चुकाते हो ! उन महान् उपकारों

के बदले एक छोटी सी बात मानने में सिर हिलाते हो, एक तुच्छ कन्या के आगे जिसके ऐसी तुम्हें संसार में हजारों मिल सकती हैं अपने बड़े भाई की आज्ञा मानने में हिचकते हो ।

कहाँ वह ज्ञान की बातें कहां वह प्रीति है सारी ।
महा कर्त्तव्य मातृप्रेम को है लात क्यों मारी ॥
निभाया धर्म अपना जब तुम्हारी आगई बारी ।
तब उसका ऋण चुकाने में है तुमने हाँक ना मारी ॥
यही बदला चुकाना है यही क्या रीति गहते हो ।
यही क्या बुद्धिमानी है जो यों विपरीत कहते हो ॥

माधव—भाई मुझे क्षमा करो, मुझ पर क्रोधित न हो, मैंने जो कुछ कहा वह थोड़ी देर की घबराहट में बक डाला, उसका नतीजा न देखा न भाला। आपकी आज्ञासे मैं शरीर के टुकड़े टुकड़े करके फेंक सकता हूं तो फिर एक नारी क्या यदि सारे संसार की सम्पत्ति मुझे मिले तो भी बिना आपकी आज्ञा उसे नहीं ले सकता हूं ।

बलासे प्रेमका निर्मल सरोवर आज विषमय हो ।
नहीं चिन्ता कि सारे प्रेम-जगमें आज परलय हो ॥
मगर मैं आपकी इच्छा से मुख हरगिज़ न मोड़ूगा ।
हृदय के नेत्र खोलूंगा, बदन के नेत्र फोड़ूगा ॥

देवदत्त—शाबाश ! मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी, तुम न घबराओ, सरला ऐसी हजारों छोकड़ियाँ तुम्हारे पांव दबायेंगी तुम्हारी चेरी कहायेंगी ।

माधव—नहीं भाई साहब, अब मुझे कोई और स्त्री नहीं

चाहिये, हो चुका मेरी आशाओं के उपवन में बवंडर का आगमन हो चुका, जो कुछ बोया था सबसे हाथ धो चुका।

देवदत्त-ऐसे विद्वान होकर इतने अधीर न हो। धैर्यधरो।

माधव-मेरी विद्वत्ता आज से भ्रष्ट हो गई,मेरी बुद्धि चिता पर जल कर नष्ट हो गई।

देवदत्त—अपनी तबीयत इस तरह न बिगाड़ो, प्रतिज्ञा पर ध्यान रख कर शान्ति से सिधारो (स्वगत) केशवराम, प्रतिहिंसा की पहली आग निहारो (जाता है)।

माधव-शान्ति ! शान्ति ! आज से उसका नाश हो गया मेरे सुख और प्रेम का विनाश हो गया, क्या करूं, यदि सरला की तरफ ध्यान जाता है तो चित्त पागल हो जाता है, यदि मन कर्तव्य की तरफ निगाह दौड़ाता है तो उसे ही स्थिर पाता है। प्रेम बड़ा या कर्त्तव्य ? नहीं कतर्व्य के आगे प्रेम कुछ भी चीज़ नही है। कर्त्तव्य पालन के ही लिये राजा दशरथ ने रामचन्द्र को बनवासी बनाया, कर्त्तव्य के ही वशीभूत होकर रामचन्द्रने सीता ऐसी सुलक्षणा से मुख फिराया, कर्त्तव्य पालन में महावीर अर्जुन ने भीष्म द्रोणाचार्य्य पर तीर चलाया, कर्त्तव्य ही के लिये वभ्रुवाहन ने पिता पर खड्ग उठाया-तो क्या मैं कर्त्तव्य से मुख फिरालूं,जिसने मेरा लालन पालन करके मुझे इतना बड़ा किया उसकी आज्ञा का पालन करने से मन हटालूं, नहींकदापि नहीं, बस आज ही सरला के पास एक पत्र लिख कर सूचित कर दूं, स्वयं किसी जंगल में चल दूं, परन्तु सरला, वह कोमल सरला उसकी क्या दशा होगी ! हाय ! यह सब सोचने का मुझे अधिकार नहीं। अब मेरा यह संसार नहीं ।

महा संकट पड़े उसको सदा सुखपूर्ण टेरूंगा ।
मगर कर्त्तव्यपालन से कभी मुखको न फेरूंगा ॥

गाना ।

महा कर्त्तव्य का पालन है पाले जिसका जी चाहे ।
ख़जाना रत्नका अपने बढ़ा ले जिसका जी चाहे ॥
ये वो शूली है जिसकी धार पर बलवीर जाते हैं ।
ग्रहण करले ये अमृत के पियाले जिसका जी चाहे ॥
महा गंगा है इसको पार कर आनन्द पाते हैं ।
हृदय को इसके डोंगे पै चढ़ाले जिसका जी चाहे ॥

अंक दूसरा । दृश्य चौथा ।

कपिलवस्तु का एक मार्ग ।

[पुरोहित का आना]

पुरो० —अवश्यमेव संसार की भी विचित्र माया है, कहीं धूप कहीं छाया है, जिस शरीर को कंचन मणि माणिक से सुशोभित करने के लिये बनाया है उसी को धूल मिट्टी में मिलाने का ज्ञान सिखाया है । जिस हृदय को मदिरा मांस के भक्षण का साधन बनाया है उसी से एक कीट को दुःखित होते देख आह निकलवाया है! तात्पर्य यह कि एक वस्तु को नरक और स्वर्ग में जानेका द्वारा बताया है, परन्तु उसका कर्त्ता केवल एकही को बनाया है। जिस सिद्धार्थ को संसार शृंगार

रसमें डुबा कर शृंगार के बाने पर खींचना चाहता है, वही सिद्धार्थ ऋषियों की तरह संसार से विमुख होकर अपने भागने का प्रबन्ध कर रहे हैं और जिन दरिद्रों को संसार के लोग अपनी नजरों से हटा कर धूल में फेंकना चाहते हैं वे लोग एक एक पैसे के यत्न में आहें भर रहे हैं, यहां की विचित्र लीला देखकर धर्मनीति, राजनीति, शस्त्रनीति, और शास्त्रनीति पशु रूप धारण करके ऋषभ की भांति घास चर रहे हैं।

अजब व्यापार का है सार इस रंगीं जमाने में।
जो रँगना चाहता है, लोग हैं उसके मिटाने में॥
जिसे इच्छा है योगी की उसे घेरा तराने में।
लगे हैं कोशिशों में, बैल को घोड़े बनाने में॥

बिना कारण से ये अज्ञान निस दिन आह भरते हैं।
समझ में कुछ नहीं आता कि क्यों ये डाह करते हैं॥

अरे बाबा, अगर सिद्धार्थ इस संसार से विरक्त होता है तो होने दो, इसमें तुम्हारे बाप का क्या जाता है, यदि ऐसे ही शृंगार रसमें किसी को फँसानेकीइच्छा है तो इस कुदरती शिकार-गाह से एकाध गधे उल्लू पकड़ लो, ऋषभ आवज़ में "रिखब" सुर मिलाकर उसकी बड़ी बड़ी आँखों से किसी कामिनी की आँखें लड़ा कर भेड़ा बना डालो; यह बला सिर से टालो। परन्तु नहीं, वह तो इस बात पर अड़े हैं कि उस योगी ही को भोगी बना देंगे? मैं यह पूछता हूँ कि यह कौन सी सनक समाई? यह कहाँ की बुद्धिमत्ता तुमने दिखाई? अच्छा, अगर ऐसी ही इच्छा है तो इस पागल खाने से किसी चिमटे-वाले को देखकर भोगी का रोगी बना डालो। पर नहीं! वह तो सिद्धार्थ ही को फँसावेंगे एक विरक्त पुरुष को

कामरक्त बनावेंगे । आज महाराज और उनकी हाँ में हाँ मिलाने वाले जूती के ताज ने यह आज्ञा सुनाई कि बसन्त-सेना नाम की जो इस शहर में वेश्या है उसे बुलाया जाय । उसका गाना सुना कर कुमार का हृदय शृंगार रस की तरफ झुकाया जाय, उसके शरीर की बंसी बनाकर नयन का चारा लगाकर प्रेम समुद्र में सिद्धार्थ ऐसे भारी मच्छ को फँसाया जाय, परन्तु उन्हें ज्ञान नहीं—

उस जान की तान महान उड़े रसरंग हो आनन फाननमें ॥
पर आन के मान में ध्यान नहीं तब सिंह बसे कब कानन में ॥
सब रंग कुरंग कुढंग बहै जब ज्ञान की चंग में दोष रहे ।
निज शब्द से विश्व अलाप रहा सब होश में हो बेहोश रहे ! ॥

चलूँ जो आज्ञा मिली है उसे करना ही पड़ेगा । तेली के बैल की तरह आज्ञा भरना ही पड़ेगा । बस अब यह चिन्ता दूर हटायें । चाहे संसार नरक में चला जावे परन्तु अपने को प्रसन्न चित्त, बनायें। उस वेश्या को बुला लायें और उसके थिरकपन और मधुर आलाप से चित्तको नचायें ?

खुशी से काम हो, साग़र का सदा दौर चले ।
रहा है तौर हमेशा जो वही तौर चले ॥

गाना

ज्ञानी सदा ही प्रसन्न रहते, मूरख रोते आठो पहर ।
संसार स्थिर तभी से है यह, फैली जबसे ज्ञान लहर ॥
हँसते ही घर बसते ॥
या जग में जनमाय के, भगवन करो सहाय ।
षड्रस भोजन नित मिलै, सरिता हँसी बहाय ॥ संसार

(जाता है)

(सिद्धार्थ और चन्न आते हैं।)

सिद्धार्थ—मित्र चन्न! जिस प्रकार मेढक अपने वास-स्थान कूएँ ही को सर्वस्व मानता है, उसी प्रकार आज तक मैं अपने विश्राम-भवन ही को समस्त सुख और शान्ति का निकेतन जानता था। परन्तु आज इस रास्ते पर घूमने से और विविध प्रकार के सज्जन पुरुषों को देखने से चित्त यही चाहता है कि सदा उनके साथ निवास करूँ और विश्राम-भवन की जितनी कीमती और सुन्दर वस्तुएँ हैं, उन सबको उन्हें देकर अपने प्रेम को प्रकाश करूँ।

चन्न—कृपानिधान! आप के उदार हृदय की शीतल छाया में संसार के अनेक मुसाफिर विश्राम लेकर अवश्य भाग्यशाली बनेंगे।

सिद्धार्थ—भाई, मेरी कृपा क्या किसी को भाग्यशाली बनायेगी, उस सर्वशक्तिमान् ईश्वर ही की छाया की आवश्यकता है जो अपनी शीतल फुहार के द्वारा अन्त में उस जगत् पिता के निकट पहुंचायेगी।

चन्न—और वह फुहार आपके आश्रय द्वार से निकल कर जगत् को अपनी ठंडक पहुंचायेगी तभी उसकी महत्ता जानी जायगी।

सिद्धार्थ—यह तो हरएक मनुष्य का कर्त्तव्य है, वह दैवी खज़ाना जिसको उसने हमें दूसरों के काम में लाने के लिये दिया है, हमें विश्वाश पात्र समझ कर हमपर इतना बड़ा भरोसा किया है।

चन्न—परन्तु हम ऐसे विवेकशून्य हैं कि उसको नतो अपने काम में लाते हैं न दूसरों ही के लिये लाभदायक बनाते हैं और ऐसे अनमोल ख़जाने को मुफ्त गँवाते हैं।

मद मोह किनारे, रूप सँवारे, ज्ञान बिसारे डोलत हैं।
बन नरक प्रवासी दुःख विलासी, निष्ठुरभाषी, बोलत हैं॥
कर्त्तव्य तजे क्षण काम भजे, अपवाद सजे मुख खोलत हैं॥
नहिं धर्म करैं, जगको विसरैं, मनकी लहरैं लै तोलत हैं॥

सिद्धार्थ—इन्हीं सब दुःख की बातों को सोच कर मेरा मन संसार से हटा जाता है, क्षणिक सुखरूपी दूध में संसारके अत्याचार रूपी नमक की कंकड़ी पड़ने से सारा का सारा दूध फटा जाता है।

काम क्रोध अरु लोभ में, फँसे जायके अन्ध।
निज करनी नहिं ध्यान दे, करते मन से द्वन्द॥

चन्न—(स्वगत) अहा! यह पुनः बात बात में विरक्तता का आशय चढ़ आया, मुख पर यह ग्लानि का मेघ उमड़ आया (प्रगट) कृपानिधान! इन बातों को बिसारिये। चलिये अब राजभवन की ओर पधारिये।

(एक वृद्धरोगी का आना)

रोगी—अरे बाबा! कोई मुझे सहारा दो, नहीं तो मैं घर जाने के पहिले ही मर जाऊँगा। अपने बच्चों का मुख भी न देखने पाऊँगा।

सिद्धार्थ—चन्न! इस मनुष्य की भयंकर दशा देखकर हृदय

घबराता है, इसका ऐसा अमानुषी रूप देख कर मन में भय समाता है। यह कौन है, इस तरह क्यों बिलबिलाता है ?

चन्न--राजकुमार ! इस शरीर की अंतिम दशा का प्रत्यक्ष फल नजर आता है।

सिद्धार्थ—अहा ! इसकी दशा देखकर हृदय पिघला जाता है।

चन्न--अन्नदाता ! वृथा सोच करने से क्या हाथ आता है। बालक, वृद्ध, अमीर, गरीब, रंक राव सबको कभी न कभी यह भाग्यचक्र ऐसी ही दशा में लाता है।

रोगी--कोई सुननेवाला नहीं, कोई बचानेवाला नहीं हाय ! जला ! मरा।

(गिरकर मर जाना)

सिद्धार्थ-अरे ! अरे ! इसको क्या होगया ? यह बोलता बोलता गिर कर चुप क्यों हो गया ?

चन्न—कृपानिधान ! इसके दुःख का अन्त हो गया, यह सदा के लिये सो गया।

जिस तनके रूप रंग पै, ऐसे लुभा रहे।
जिसके लिये हजारहाँ के खूं बहा रहे ॥
उसका असल में तत्व जो है सामने खड़ा।
अस्ली दशा है देह की, जो रूप यह पड़ा ॥

सिद्धार्थ—हाय ! ऐसे शरीर की ऐसी बुरी स्थिति ! फिर भी संसार-चक्र में पड़कर मनुष्यों की ऐसी दुर्मति। जो कलेवर इतनी ममता इतना मोह इतना राग इतना द्वेश मचाता

है, वह अन्त में इस दशा को आता है। जो, माता, पिता, पुत्र, पुत्री, स्त्री पति के लिये व्याकुल हुआ जाता है वह ऐसी करुणाजनक दशा में भस्म हो जाता है। संसारी माया के प्रकाश का इतना भयानक अन्त ! हा हन्त !

(एक साधु गाता हुआ आता है)

गाना ।

साधु--क्यों जग भटके मूढ़ दिवाना ।
माटी की यह देह बनी है,
माटी में मिल जाना । मूरख० —
माटी उढ़ना वही बिछौना,
माटी का सिरहाना ।

तज माया-बन्धन को प्यारे, गहे फकीरी बाना ॥ मू०—

सिद्धार्थ—चन्न ! यह कौन है ?

चन्न—एक संसारत्यागी संन्यासी वैरागी ।

सिद्धार्थ—संसारत्यागी है तो क्या स्नेह-सम्बन्ध से विरागी है ?

(साधु जाता है)

चन्न—हाँ दीनानाथ ! इसका स्नेह तमाम संसार से है, इसका असली कुटुम्बी नाता केवल उस कर्तार से है ।

सिद्धार्थ—वाह वा ! इनको देखने से हृदय निर्मल हुआ जाता है, जाओ रथ तैयार कराओ ।

चन्न—जो आज्ञा । (जाता है)

सिद्धार्थ—मेरे भटकते हुए मनको असली मार्ग बताने वाले

महात्मन्! आपको नमस्कार है। सांसारिक अन्धकार को हटाने वाले चमत्कार, तुम्हारा महान् उपकार है । सिद्धार्थ, अब तुम्हारी ही शैली का तलबगार है ।

बहुत खाई हवा उपवन की अब जंगल का रस्ता है ।
जिसे समझा था सोना वह निकम्मा तुच्छ जस्ता है ॥
तेरे जीवन के रसका योग ही केवल रसायन है ।
सँभल अब भी, नजर ले फेर, वो संसार हँसता है ॥

अंक दूसरा । दृश्य पाँचवाँ ।

(रामचन्द्र का मकान)

[रामचन्द्र हाथ में मनुस्मृति लिये आता है]

रामचन्द्र—धत् तेरे 'मनु' की ऐसी तैसी । कानून बनाते बनाते ब्राह्मणों पर भी हाथ फेर दिया, संडास की तरफ दीवार खड़ी करते करते बगीचे को भी घेर दिया (पढ़ता है) ।

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते ।
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रो ब्रह्मजानाति ब्राह्मणः ॥

ब्राह्मणों के घर में उत्पन्न हो और बिना विद्या के शुद्र के समान हो, धिक्कार है, मनु तुम महा अज्ञान हो, जो ब्राह्मणों की इस प्रकार निन्दा करवाते हो । ब्राह्मण कौन ? साक्षात् ब्रह्मा के शीश से उत्पन्न चाहे विद्या न पढ़े तो क्या हुआ परन्तु है तो ब्राह्मणत्व में सम्पन्न! अहह! इन्ही शास्त्रोंको पढ़के वो दुक्खी

हज्जाम ढोल बजाता हुआ शास्त्रागार में आया। जिस स्थान को केवल द्विजगण द्वारा पवित्र होना चाहिये उसे उस शूद्र ने कलुषित बनाया, क्या करूँ,अगर मनु को पाता तो उसे कच्चा ही चबा जाता। (रामदास का आना)

रामदास—महाराज आज किस पर कुड़बुड़ा रहे हैं? किस हेतु यह आंखें लाल पीली बना रहे हैं?

रामचन्द्र—कौन? हरिदास बाममार्गी का पुत्र रामदास! अरे चाण्डाल! तू अपने इस अधम शरीर के सहित यहाँ क्यों आया?

रामदास-इस लिये कि आप अपने वाणीरूपी प्रायश्चित्त से पवित्र बनाइये। मेरे पिता भले वाममार्गी हों, परन्तु इस दास को शुद्ध ब्राह्मण-धर्म्म पालन करा के ख्याति कमाइये।

रामचन्द्र—अस्तु। तुम्हें सत्वर प्रायश्चित्त करके अपने को पवित्र बनाना होगा, प्रायश्चित्त करने के पश्चात् १०० सौ ब्राह्मण-भोजन कराना होगा।

रामदास—परन्तु महाराज, भोजन कराने के लिये पैसे कहाँ से लाऊँगा, इतना भारी खर्चा किस तरह उठाऊँगा?

रामचन्द्र-चाहे कहीं से लाओ, परन्तु ब्राह्मण-भोजन अवश्य कराओ। जब तक सहस्र ब्राह्मण भोजन से सन्तुष्ट होकर ढकार-रूपी शंख न बजावेंगे, तब तक परमात्मा एक वाममार्गी ब्राह्मण के पुत्र को कभी न अपनावेंगे।

रामदास-परन्तु धर्म्म-पुस्तक में तो ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है।

रामचन्द्र-राक्षस ! मेरे सामने बहस करता है ? धर्म्म-पुस्तक पर यह दोष धरता है? अरे उसके प्रति पृष्ठ, प्रति अक्षर, प्रति भाष्य पर ब्राह्मण-भोजन ब्राह्मण-दान के महान् बखान का प्रमाण लिखा है ।

रामदास-परन्तु मुझको तो कहीं नहीं दिखाई दिया ।

रामचन्द्र-दिखाई कहाँ से देता ? तेरी आँखों पर तो नास्तिकता के पर्दे पड़े हैं; तेरे वाममार्गी पिता के कर्म की गर्द छाई है जिसने तुम सब को अन्धा बना दिया है, मगर हाँ जब तुम प्रायश्चित्त कर के इस सर्वश्रेष्ठ महा उपकारी विष्णु रूपधारी योनि में आओगे तभी ब्राह्मण-भोजन ब्राह्मण-दक्षिणा में क्या महत्व है, अच्छी तरह समझ जाओगे ।

रामदास—परन्तु—

रामचन्द्र—परन्तु को गोली मारो । दलील, विवाद, तर्क, न्याय सब को आग लगा कर अपने घर को सिधारो । प्रथम ब्राह्मण-भोजन का प्रबन्ध करके आओ । तब मेरे बुद्धि-चातुर्य्य, मेरे न्याय-शास्त्र के मीठे रसीले फल खाओ ।

रामदास-और अगर उतने ब्राह्मणों को भोजन न करा सका तब ?

रामचन्द्र-तो अपना काला मुँह न दिखाओ ।

रामदास-अस्तु । मैं जाता हूँ, और आपके आज्ञानुसार ब्राह्मण-भोजन का प्रबन्ध करके आप को समाचार सुनाता हूँ ।

रामचन्द्र-प्रसन्न हो ! भक्त प्रसन्न हो ! शीघ्र जाओ, इस ब्राह्मण की आज्ञा का पालन कर श्वान-योनि से मनुष्य-योनि में आओ ।

रामदास–जो आज्ञा । [जाता है]

रामचन्द्र–कैसा डपटान बताया, उसे रास्ते पर लाया । आजकल समस्त पृथ्वी ने दुष्टता धारण कर ली है, जिधर दृष्टि दौड़ाओ वहाँ हीं नास्तिकता, यवनता, और वेदादिक क्रिया कर्म घट कर उपहास की रसिकता ने प्राणिमात्र को अन्धा बना दिया है । ऐसे कष्टदायक समय में जगत् को सुधारने के लिये मेरे समान ब्रह्मा–मुख से उत्पन्न ब्राह्मणों की महान् आवश्यकता है, यद्यपि मार्ग अति विकट है, तथापि जब हरि-दास बाममार्गी का पुत्र रामदास जैसे भयानक जन्तुओं को मैंने मनुष्य बना दिया है. तो निश्चय है कि मनुष्य-योनि का उद्धार करूँगा, संसार का उपकार करूँगा ।

[श्रद्धानन्द का आना]

श्रद्धा०–नमो नमः ब्राह्मण-पुत्र !

रामचन्द्र–कल्याण अब्राह्मण ।

श्रद्धा०–किं वक्तव्यं ? मुझे अब्राह्मण काहे कहतव्यम् ?

रामचन्द्र—तू संस्कृत बोलता है कि संस्कृत की टाँग तोड़ता है ? इसका प्रथम उत्तर दे । बिना शिखा सूत्रधारी सनातन-धर्म-अविचारी !

श्रद्धा०—मुंह सम्भाल कर बातें कर, सभ्य भाषा का प्रयोग कर ।

रामचन्द्र—एक चाण्डाल से सभ्य भाषा का प्रयोजन ? एक शूद्र से शिष्टाचार का प्रयोग ?

श्रद्धा०—देखो, मुझे गुस्सा आ रहा है । क्रोध से मेरा माथा भन्ना रहा है । कहीं ऐसा न हो कि वह आपे से बाहर

हो जाये और उछल कूद कर अपने समदर्शी को दम्भ से एक चिमटा जमाये।

रामचन्द्र—और उसकी झनकार सुनकर ब्राह्मणपुत्र का श्रापद्वार खुल जाय और तुझे समूचा भस्मीभूत बनाये।

बड़ा निष्ठुर है मेरा श्राप, क्या तुझको नहीं मालूम ?
समझ कर क्यों बना जाता है बेपर, गावदी का दुम !॥

श्रद्धा०-मुझे ज्ञात न था कि मैं किसी पागल के घर में घुस आया हूँ, मैंने तो यह समझा था कि किसी धर्माचारी के गृह पर निमन्त्रण देने आया हूँ।

रामचन्द्र—क्या कहा! निमन्त्रण ? किस बात का निमन्त्रण ?

श्रद्धा०—एक ब्राह्मण के घर पर आकर भोजन के अतिरिक्त और किसका निमन्त्रण देना होता है, परन्तु तुम्हारे घर आकर तो मनुष्य पहिले ही सुध-बुध खोता है।

रामचन्द्र—हरे भाई, क्षमा करो। वह तो मेरी बाई की झक्कक थी, उसको तो कुछ ध्यान में न लाओ और भोजन किस समय और किस स्थान पर करना होगा, यह बताओ।

श्रद्धा०—परन्तु आप ने तो मुझे शूद्र बनाया है, भला मेरा मिष्ठान्न किस प्रकार स्वीकार होगा ?

रामचन्द्र—आप चिन्ता न करिये, उसे मंत्र-बल से शुद्ध करना इस ब्राह्मण का कार्य होगा।

श्रद्धा०—अवश्य ! अवश्य !

रामचन्द्र-परन्तु, दाता ! भोजन में क्या २ सामान होगा ?

श्रद्धा०—यही बुंदिया, लड्डू, जलेबी, मोहनभोग, मलाई, बड़े इत्यादि इत्यादि पक्वान्न।

रामचन्द्र—मेरे भगवान्, तब तो तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा ।

वेदोच्चारण से वहाँ, पूरण होगी रस्म ।
इच्छा से इस ब्रह्म के, पाप सभी हों भस्म ॥

प्रसन्नतापूर्वक पधारिये, मैं मध्यान्ह समय पहुँच जाऊँगा अपने उदर भगवान् को क्षुधा निवारण कर तृप्त बनाऊँगा ।

मेरे सदृश जो ब्राह्मण उच्च कुल के तुम जिमाओगे ।
सदा सुखपूर्ण हो आनन्द से जीवन बिताओगे ॥

श्रद्धा०—आज्ञा हो तो जाऊँ ?

रामचन्द्र—बड़ी प्रसन्नता से यजमान सिधारो, हमारी तृप्ति-अनुसार भोजन कराके स्वर्ग का द्वार निहारो ।

[दोनों जाते हैं]

अंक दूसरा । सीन छठा ।

सिद्धार्थ—कुमार का शयन-गृह,

[सिद्धार्थकुमार निद्राग्रस्त हैं]

सिद्धा०—[स्वप्नवश] आता हूँ । आता हूँ । हे समस्त विश्व के दृश्य, अदृश्य आत्माओ, तुम्हारे बहते हुए आँसुओं को पोंछने आता हूँ । हे दुखिया जीवो ! तुम्हारा कष्ट मिटाने के लिये अपने शयन-गृह की दीवार तोड़कर आता हूँ । [जाग कर] हैं ! यह मैंने क्या देखा ? यह मैंने क्या सुना ? सिद्धार्थ ! जगत् से इतना विरक्त होने पर भी तू एक विलासी बना आधी अवस्था भोग-विलास में बिताया, ईश्वर की कृपा से एक पुत्र भी पाया फिर भी इस मोह-माया से मन न हटाया ।

बस! संकल्प के पूर्ण करने का आज समय आन पहुंचा। संसार की सेवा करने का वक्त आन पहुंचा। [विचार कर] परन्तु, हाय! किशोर बालक तथा प्यारी यशोधरा और माता पिता मेरे बिछोह से कितने दुःखी होंगे! परन्तु, क्या इतने दिन की की हुई प्रतिज्ञा को एक क्षणिक सुख के लिये बदल दूँ? क्या महान् कर्त्तव्य को कुचल दूं। सिद्धार्थ! सम्हल! तृष्णा-रूपी नदी में अचानक न फिसल। माता, पिता, पत्नी, पुत्र, संगी, साथी, इन सब को मेरे बिछोह का दुःख उठाना होगा परन्तु इस थोड़े से दुःख से बचने के लिये असंख्य जीवों के परम सुख को मिटाना होगा। हाय! विधाता का कैसा क्रूर निर्माण है कि बिना वियोग के मैं सत्य का शोध नहीं लगा सकता। बिना अपने आत्मियों को त्यागे समस्त विश्व के दुःखों को हटा नहीं सकता। यह मेरी प्रतिज्ञा मुझे डिगा रही है। बहादुर सिद्धार्थ की आत्मा अपने निश्चय किये हुए उद्देश से क्यों हटी जा रही है? सावधान हो सिद्धार्थ! संसार के सुख को भूल जा। अपने असली कर्त्तव्य में मन लगा। जिस वस्तु का अंत दुःख और नाश है उस तरफ पग न बढ़ा, कपिलवस्तु को प्रणाम कर और शीघ्र ही यहां से पयान कर। मेरे माता-पिता, तुम्हें बार बार नमस्कार है। प्राणप्रिये यशोधरा! प्यारे रोहिल कुमार! तुम्हें मेरा प्यार है। [पुकारता है]

कौन है? [सेवक आता है]

सेवक—कुमार जी! क्या आज्ञा है?

सिद्धार्थ—भाई! शीघ्र जाओ और चन्न को घोड़ा तैयार कर के नगर-द्वार पर लाने को कह आओ।

सेवक-इस समय बाहर जाने का कारण ?

सिद्धार्थ-यह तुम पीछे जानोगे, जाओ, जल्दी जाओ, देर न लगाओ । [सेवक जाता है] सिद्धार्थ ! सिद्धार्थ ! अपना बेगाना छोड़, सुख से मुख मोड़, कर्तव्य के लिये गृहत्याग, इस माया से शीघ्र भाग ।

मिटा सम्बन्ध ले झंडा जगत् के कष्ट हरने का ।
पियासे हैं बिचारे जीव कर तू काम झरने का ॥
बँधे हैं एक ही सब सूत्र में निष्काम बतला दे ।
अरुण सम ले किरण अब मौत का पैगाम समझा दे ॥

गाना ।

हे प्रभु ! दया दया की है रट लागी,
माया छोड़ बना जगत्यागी--प्रभु०,-
मात पिता दारा सुत सिगरे, माया के अनुरागी,
त्यागे सारे बंधन मन से, विमल वासना जागी-हे प्रभु ।

अंक दूसरा । दृश्य सातवाँ ।

केशव का घर ।

[शान्ति, माधव का पत्र लिये आती है]

शान्ति--ऐ मेरे दिल के टुकड़े २ करनेवाले खूनी हरफो, मैंने तेरा क्या अपराध किया था, जो तू ने मुझसे ऐसी दुश्मनी का बदला लिया है ? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था, जो तू ने मुझको दुःख देने के लिये प्यारे माधव को ऐसा बेदर्द बना दिया है ? माधव ! प्यारे माधव ! मेरे जीवन के सहारे माधव ! वह तुम्हारे हृदय का कौनसा पथरीला हिस्सा था जिसने तुम्हें

ऐसा कठोर, ऐसा हृदयविदारक पत्र लिखने पर बाध्य किया ? मुझसे कौनसी ऐसी चूक हुई कि तुमने मेरे कोमल हृदय को इस प्रकार बेधित किया ? [पत्र पढ़ती है] "परमात्मा को मेरा सुख देखना नहीं भाया, इस हेतु मैं जाता हूँ । शान्ति ऐसी सुलक्षणा से मुख फिराता हूँ"[थोड़ी देर विचार कर] माधव, हृदयेश माधव, प्राणेश्वर माधव ? तुम कहाँ चले गये ? मेरे जीवन--स्वप्न को क्यों अंधेरे में डाल गये, मेरी नाव को क्यूं मझधार में डुबा गये, आओ, एक दफा अपनी प्यारी की दशा देख जाओ, फिर जाओ ।

जाना ही है तुम्हें तो बखेड़ा चुका के जाओ ।
मारा जिसे है उसका निशां तो मिटा के जाओ ।

क्या तुम न आओगे ! क्या पहिले जिसका एक शब्द सुनने के लिये तुम इतने उतावले हो जाते थे, उसके इतने रोने--धोने पर—इतनी बिनती करने पर ध्यान न लाओगे—क्या वास्तव में इतने कठोर हो जाओगे ?

परन्तु तुमको इतना कठोर किसने बनाया ? एक मोम को पत्थर का किसने जामा पहिनाया-[बिचार कर] हां, अब मैंने जाना, यह सब उसी चाण्डाल देवदत्त का काम है जिसने हम दो दिलों को दुखाया। परन्तु देवदत्त ! हम लोगों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? क्या हमारा मिलना तुम्हें पसंद न था । क्या हमें प्रसन्नचित्त देख तुम्हें आनन्द न था ? हाय ! मुझे पहिले से ज्ञात होता कि तुम मेरे हृदय को ऐसी चोट पहुंचाओगे तो मैं उस पर प्रेमपुष्प न डालती; उसको इतने यत्न से न पालती, वरन् अपने तेज और विषैले नखों से नोच डालती—इसे अपने इस पिंजड़े से निकाल डालती ।

गर जानती कि अन्त में रोनाही मुझको होगा ।
गम्भीरता दृढ़ता सभी यह प्रेम मेरा लेगा ॥
तो नाथ थाती तेरी उस वक्त ही दे डालती ।
कंठस्थ मेरा प्राण है, फिर रोग यह क्यूं पालती ॥

हैं, मन ! तू अभी लौं चुप क्यों खड़ा है—हाय मेरा प्यारा इधर उधर मारा फिरे और तू चुपका रहे-वह जंगलों में ठोकरें खाये और तू महलों में आनंन्द मनाये—अपने प्रियतम को ढूंढ़ने से पीछे पाँव हटाये ! चल उठ, कर्तव्य के कार्य्य में हृदय का सुमन और नैवेद्य लेकर अपने इष्ट-देवता को खोज निकाल-उनकी पूजा करके अपने को उनके चरणों में डाल । इस गृह को प्रणाम कर, जिस ठौर तेरे प्राणनाथ हैं वहीं शीघ्रता से पयान कर—

नहीं है पुष्प अपने भाग्य का इस शुष्क उपवन में ।
चुभेंगे रात दिन काँटे तेरे हृद्-रोग-सूजन में ! ॥

गाना ।

नहिं चैन पड़त है एक घड़ी, पद प्रीतम के ढिग जावत हैं ।
दर्शन बिन व्याकुल हैं नैना, मोहे पल पल में कलपावत हैं ।

दोहा ।

'पी' की रसना पी चुकी, औरन से क्या काम ।
प्रेम-सरित में भी वही, पार करै "पी" नाम ॥

अङ्क दूसरा । दृश्य आठवाँ ।

अनामी नदी का किनारा, समय प्रातःकाल "सूर्योदय ।"

[सिद्धार्थ तथा चन्न घोड़ों को एक किनारे बाँध कर आते हैं]

चन्न-राजकुमार ! मध्य रात्रि में आप राज-महल का सुख छोड़ राजकुमारी तथा रोहिल कुमार के प्रेम से मुख मोड़ यहाँ तक चले आये-मैं आप के आदेशानुसार आप के साथ यहाँ तक आया, मगर अभी तक आप ने ऐसे अचानक गृह-त्याग का कारण न बताया ?

सिद्धार्थ-प्यारे चन्न ! मैं ऐसे समय में क्यों चला आया, यह तुम्हें क्या बताऊँ-मेरे हृदय के भीतर कौन सा दृश्य घूम रहा है वह तुम्हें कैसे समझाऊँ, मगर अब इस समय बताना ही होगा, जो बात आज तक अन्धकार में थी उसे उजाले में लाना ही होगा—

चन्न-कृपया शीघ्र सुनाइये । आपकी बातें मुझे घबरा रही हैं—मेरे हृदय के भीतर न मालूम कैसी गड़बड़ मचा रही हैं ।

सिद्धार्थ-मेरा तात्पर्य तो यह है कि आज से मैं सारे संसारी सुख, संसार-स्नेही कुटुम्बी तथा कपिलवस्तु को प्रणाम करूँगा, संसार को सुखी बनाने के लिये सब कुछ त्याग के कहीं और पयान करूँगा ।

चन्न-ओह ! कपिलवस्तु के रत्न और मेरे स्वामी ! मेरे मालिक ! ऐसा हृदयवेधक शब्द मुख से न उच्चारिये-मेरा प्राण लेना हो तो लीजिये, परन्तु शीघ्र ही राजमहल की ओर पधारिये । आप की यह धार्मिक बातें मेरे हृदय को टुकड़े २ कर

रही हैं, मुझे प्राणरहित बना रही हैं, हे दयालु महात्मन् ! इस सेवक की बिनती स्वीकारिये—बस पधारिये, राजमहल की ओर पधारिये ।

सिद्धार्थ-प्यारे चन्न, धीरज धरो, इतने अधीर न हो कोई पक्षी पिंजड़े से छूट कर पुनः उस में जाना स्वीकार न करेगा या एक क़ैदी क़ैद के दुःख से बाहर आ कर फिर उस को अपना आधार न करेगा । जाओ, मेरे प्यारे चन्न, लौट जाओ ! सिद्धार्थ अब समस्त संसार के उद्धार के सार का व्यापार करेगा [सिर से मुकुट तथा अलंकार उतार कर] यह मुकुट ! यह वस्त्रालङ्कार—यह रत्नहार सब अपने साथ लेते जाओ, इनकी सूरत मुझे और न दिखाओ । पिता-माता को मेरा प्रणाम कहना । प्रिया यशोधरा को सांत्वना देना जहां आज तक मेरे ऊपर इतना उपकार किया है वहां इतना और करना ।

प्रार्थना है यही कि धैर्य को धारे रहना ।
मेरा संदेश मेरे मातपिता से कहना ॥
देश की शान में कर्त्तव्य का पहा गहना ।
जान भी होवे निछावर तो खुशी से सहना ॥
आश्रय दीन व दुखियों को सदा तुम देना ।
जो कभी आन मिलेंगे तो समझ यह लेना ॥

चन्न-हे दया के सागर ! हे गुणों के आगार ! आप क्यों ऐसी बातों से मेरे हृदय को चोट पहुंचा रहे हैं, मुझको क्यों ऐसे कठोर शब्द सुना रहे हैं ? हाय ! मैं कौन सा मुख लेके कपिलवस्तु जाऊंगा ? आपके माता-पिता जब मुझ से आपका संबाद पूछेंगे तो उन्हें क्या सुनाऊंगा ? प्रभो ! तनिक विचारिये जिसने

आपके लिये अपना जीवन धारण किया है, जिसने आपके सुख में सुखी आपके दुःख में दुःखी रहने का संकल्प लिया है। वो देवी-वो सती इस दिलके हिला देने वाले सम्बाद को कैसे सुनेंगी, आपके वियोग को कैसे सहन करेंगी।

बात सुनते ही कली की तरह मुरझावेगी।
आपकी याद में तत्क्षण वहीं मर जावेगी॥

सिद्धार्थ-चन्न! मेरे प्यारे चन्न! मेरे मित्र! मेरे दहकते हुए हृदय को इन बातों का स्मरण न कराओ, वियोग की अग्नि को ज्वालामुखी न बनाओ, जाओ—सिधारो-मेरे माता, मेरे पिता, मेरी प्रियतमा यशोधरा को समझाओ कि मैं एक महान् कर्तव्य-पालन के लिये उन लोगों को त्याग रहा हूँ, समस्त संसार के प्रचण्ड दुःख को मिटाने के लिये राज सुख, दम्पती-सुख से भाग रहा हूँ। जो सिद्धार्थ आज तक अन्धकार में पड़ा मार्ग टटोलता रहा, वह उसे दूर करके-उस स्वप्नवत् अंधकार को मिटा कर के जाग रहा है—बस अब मुझ से अधिक न कहलवाओ, जो हँसता मुख मुझे सदा दिखलाया करते थे वही मुख इस समय भी दिखाओ और फिर यहाँ से सानन्द सिधारो।

चन्न—मेरे मालिक, मेरे अन्नदाता, यह आप कैसी आज्ञा सुनाते हैं, मानों मेरे हृदय में ज़हर बुझे तीर चलाते हैं। क्या बिना हवा और रौशनी में कोई जानदार जी सकता है? क्या प्रकाश को त्याग कर कोई अन्धकार में रहना पसन्द कर सकता है? मेरे स्वामी मेरे अन्नदाता! कपिलवस्तु के मुकुटमणि, महाराज, महारानी तथा देवी यशोधरा और प्रिय राहुल-

सिद्धार्थ–प्यारे चन्न ! यह मुकुट यह वस्त्रालंकार–यह रत्नहार सब अपने साथ लेते जाओ–इनकी सूरत मुझे और न दिखाओ ।

भारत-प्रेस, काजीपुरा, काशी ।

कुमार को नैराश्य के अन्धकार-कूप में न ढकेलिये, यदि मुझसे कोई अपराध हो गया हो तो मुझे देशाटन का दण्ड दीजिये, परन्तु कपिलवस्तु को त्यागने का विचार न कीजिये न कीजिये ।

अपराध जो हुआ हो मुझसे सजा वो दीजे ।
मेरे शरीर के ही टुकड़े हजार कीजे ॥
कृपया न देश-त्यागन का नाम आप लीजे ।
है प्रार्थना यही अब दिल आपका पसीजे ॥

सिद्धार्थ-प्यारे चन्न ! यह कैसी बेतुकी बातें मुख पै लाते हो--यह क्या सुनाते हो ? अपराध ! और तुम से हो ? रुष्ट होऊँ मैं किससे ? जो मेरे साथ सदा छत्र की भांति रहा है, जिसने मेरे लिये अनन्त क्लेश, अनेक कष्ट सहा है, उस सच्चे मित्र से जो अपनी समस्त इच्छा और अभिलाषाओं को मेरे ऊपर निछावर किये रहता है उस सच्चे और जांनिसार दोस्त से ?

चन्न--तो भला फिर क्यों आप राज छोड़ कर जाते हैं-अपने सेवकों की सेवा ग्रहण करने से मुख फिराते हैं ?

सिद्धार्थ--प्यारे चन्न! बहुत दिनों तक मैंने मानव-रूप, रस-गंध-स्पर्श और काम इत्यादि का भोग सुख किया, परन्तु मुझे तृप्ति नहीं हुई, वरन् ये सब दहकती हुई आग की तरह विषय भोग के घी से और प्रचण्ड वेग से प्रज्ज्वलित होकर मुझे जलाती गईं ! हमलोग मोह और अविद्या के अन्धकार में पड़े हुए हैं-दुःखरूपी शत्रु हमारे पीछे लगे हुए हैं। इस महा दुःख के सागर को मैं पार करना

चाहता हूं। इस क्लेशरूपी निर्जन बन से मैं भाग कर अस्ली सुख को प्राप्त करना चाहता हूँ, केवल यही नहीं, किन्तु अनंत संसार को उस अजर, अमर, मोक्ष-मार्ग पर ले जाना चाहता हूँ। सो यदि तुम मुझ से प्रतिज्ञा करो कि जो मैं तुमसे कहूंगा उसे अवश्य मानोगे तो मैं तुम से एक प्रार्थना करूं, अपनी अमूल्य भिक्षा की याचना करूं।

चन्न—अन्नदाता! यह दास आपके चरणों की शपथ खाकर कहता है कि जो श्रीमान् आज्ञा करेंगे यह दास उसे अवश्य पूर्ण करेगा।

जो आज्ञा हो, स्वर्ग में भूचाल मचाऊं।
सुरपति को एक आन में पाताल पठाऊं॥

सिद्धार्थ—तो देखो, यदि तुम्हें अपनी बात की आन हो, मेरे प्रेम का मान हो तो मुझे इसी स्थान पर छोड़ जाओ, मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि मैं गृहत्याग अवश्य करूंगा-इसमें बाधा न लाओ।

चन्न—हा दैव! यह क्या किया! स्वामी, आपने मुझे बड़ा धोखा दिया। हाय! आज से कपिलवस्तु का सूर्य अस्त हो गया, राजभक्ति विदा हो गई, सुख सम्पदा हम में सदा के लिये जुदा हो गई।

सिद्धार्थ-मेरे बहादुर सारथी, मेरे हितचिन्तक मित्र, अपने हृदय को दुःखी न करो, धैर्य धरो और सुख से सिधारो। मेरे माता पिता, प्रिय यशोधरा से मेरा व्रत जाकर सुनाना। माता गोतमी, प्रिये यशोधरा जिसमें अधीर न हों वैसा प्रयत्न करना और समझाना कि:—

कामद्रुमफला यथा पतन्ति, पथइव अभ्र बालाहका व्रजन्ति ।
अध्रुव चपल मामि मारुतं वा, विकरण सर्वशु भस्म वंचनीया ॥
सदा सुखधाम तरुवर पुष्प फल सब नष्ट होते हैं ।
जो इसमें फँस गये वो रात दिन "हा कष्ट" रोते हैं ॥
जब इस संदेश को सब विश्व में जाकर सुनाऊँगा ।
आज बिछड़ा हूं तो क्या, फिर एक दिन मिल जाऊँगा ॥

चन्न—स्वामी ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । हाय ! यह कुसम्बाद पहुंचाना ही अब इस अभागे का कार्य है !

सिद्धार्थ—उपकार, अनन्त उपकार, मेरे प्यारे सर्दार, नमस्कार ।

चन्न० —प्रणाम, कपिलवस्तु के प्राणाधार !

[सिद्धार्थ अपना वेष नदी किनारे जाकर योगियों के ऐसा बनाते हैं । चन्न यह दृश्य नहीं देख सकता !]

चन्न—आँखो, पथरा जाओ, यह हृदयभेदक दृश्य दिखाने के पहिले पृथ्वी माता इस पापी को निगल जाओ ! कपिल-वस्तु के प्राण, अपना ऐसा वेश न बनाओ, न बनाओ ।

[दुःख से नेत्र बन्द कर लेता है । सिद्धार्थ भाग जाते हैं, चन्न आँखें खोलने पर सिद्धार्थ को अदृश्य देख दुःखी होकर गिर पड़ता है ।]

हा दैव ! यह क्या किया, किस पाप का बदला दिया ।

अंक तीसरा। दृश्य पहिला।

(श्रावन्ती वन)

[माधव योगी-वेष में चिन्ताग्रस्त है]

माधव, गाना।

जपत नाम वाको—नारायण, हे! निरधन के धन-॥
बेलि वितान लगा नभ-मंडल, सूर्य चन्द्र हौं दीपक समतल।
करत प्रकाश भरी मजलिस में, खेल खिलावत सूत्रधार बन॥जपत०

कौन कह सकता है कि इस योगी के भेष में प्रेम का रोगी मारा २ फिर रहा है? कौन कह सकता है कि इस शांतिमय स्थान पर भी एक अभागा चिन्ता तथा क्लेशों से घिर रहा है? सावधान! माधव! तेरे इस रोने धोने में बिछड़े हुए न मिल जायेंगे, प्रेम पुष्प न खिल जायंगे, वरन जितना ज्यादा तू इन बातों को सोचेगा, उतना ही ये तेरे जीवनसागर में डगमगाती हुई प्रेम-नौका को हिलायेंगे और अन्त में मझधार में ले जाकर डुबायेंगे-परन्तु क्या करूं यही रोना मेरे दिल को दिलासा देने वाला है, मेरे पापों का प्रायश्चित्त है, मेरे जीवन का मोक्ष है।

दुनिया में कभी रोग कभी द्वेष ने घेरा।
खोजा प्रकाश पर है मिला पूर्ण अँधेरा॥
जगदीश! हृदय को मेरे पाषाण बना दो।
औ शान्ति प्रेम राग की लय तान सुनादो॥

(सामने देख कर)

हैं! वो सामने से देवदत्त गेरुये वस्त्र में भगवान बुद्ध के अनुयायियों के साथ इधर आ रहे हैं, जरा छिपके देखूं क्या

रंग ला रहे हैं, क्योंकि जिसने मुझे आश्रय देकर शांति का मार्ग दिखाया है, कहीं उस के विरुद्ध कोई बात तो नहीं है ? कहीं देवदत्त जी की दूसरी घात तो नहीं है ?

[माधव छिप जाता है । देवदत्त, कौडिन्य , भद्रेय तथा महानाम केसाथ आते हैं ।]

देवदत्त—कहो साधुजनों, क्या वही तुम्हारे आदरयोग्य गुरु शाक्यमुनि हैं जो गणिकाओं से सेवा कराते हैं ? एक ओर आप लोगों को योग का उपदेश देते हैं- दूसरी तरफ कामिनियों के हाथों से मिष्ठ पकवान की सामग्री खा भोग विलास में मन लगाते हैं ?

कौडिन्य—देवदत्त जी ! वह दृश्य देख कर मुझको दुःख होता है कि शाक्यमुनि ने संन्यस्थ धर्म में भारी कलंक लगाया ।

महानाम—और हमें आज तक अपने भ्रमजाल में फँसाया ।

भद्रेय—शाक्यमुनि ने राजपाट तो छोड़ दिया, परन्तु योग व्रत तोड़ दिया ।

देवदत्त—अभी जब तक अंतर न रंगाये---तब तक भला गेरुआ वस्त्र पहिनने में कोई योगी क्या कहाये ? शिव ! शिव ! ऐसे चाण्डाल को तो परमात्मा जीते जी मट्टी में मिलाये !

कौडिन्य—देवदत्त जी ! आज आप ने हम लोगों की आँखों पर पड़े हुए पर्दे को हटा दिया । शाक्यमुनि का कपटी भेष समझा दिया, इस हेतु हम आप का अत्यन्त उपकार मानते हैं ।

महानाम—और आजसे आपही को अपना गुरु जानते हैं ।

देवदत्त-भला मेरे ऐसे अल्प बुद्धि वाले तपस्वी की क्या बिसात है कि आप लोगों का गुरु बनूँ -परन्तु जब आप लोगों की ऐसी ही इच्छा है तो मैं आप लोगों की सेवा को तैयार हूँ ।

भद्रेय—अहा! कैसी नम्रता, अच्छा तो आज्ञा दीजिये कि हम लोग निरंजना नदी के तट पर संस्कार करने जायें, प्रायश्चित्त से अपनी भूलचूक के बोझ को हलका बनायें।

देवदत्त—अवश्य पधारो। भक्तजन! अब किसी प्रकार की चिन्ता मन में न धारो।

(सब जाते हैं।)

देवदत्त—सिद्धार्थ! राज्य सुख छोड़ने पर भी संन्यासी तथा साधुजन में तेरी प्रतिष्ठा हो यह मुझसे देखा नहीं जासकता—यशोधरा के स्वयंबर में जो देवदत्त का अपमान हुआ था वह तू भूल जासकता है;परन्तु मैं भूल नहीं सकता। तू जहाँ जायेगा वहाँ तेरे पीछे मैं छाया की भांति जाऊँगा। जहाँ तू लड़ेगा वहीं उसी दम तुझे नीचे गिराऊँगा—यदि इसमें फलीभूत न हुआ तो अंत में विवश हो संसार से तेरा चिन्ह मिटा देने में भी न हिचकिचाऊँगा।

अगर तू सूर्य है तो राहु बन के मैं चबाऊँगा।
बना जो धर्म तो मैं कालकी सूरत बनाऊँगा॥
प्रतिष्ठा हर जगह तेरी कपट से मैं हटाऊँगा।
सदा अपमान का अपने युंही बदला चुकाऊँगा॥
संभल जा देख शर मेरा कभी खाली न जायेगा।
निशाना सरका है तेरे, तुझे सर से गिरायेगा॥

गाना—

बज्रपात से आकाश आह मारे॥
मैं काल सम बिषधर बनकर फुहकारूँ—
बच न सकत करत हृदय छार छारे—॥ बज्रपात०—

(गाना ।)

माधव–(प्रकट होकर) हे भगवान, यह मैंने क्या सुना जो एक का दिल दुखाने पर भी देवदत्त जी को आनन्द न मिला, कि अब पुनः ऐसा षड्यंत्र रच रहे हैं । जो आत्मा राज्यसुख को तिलाञ्जलि देकर केवल मनुष्यमात्र की भलाई के लिये इधर उधर घूम रही है, उसी के लिये ऐसा दुष्कर्म करके भी अब तक बच रहे हैं । जाऊँ, शीघ्र जाऊँ; यह समाचार भगवान शाक्य मुनि को सुनाऊँ और उन्हें आनेवाली बिपद से बचाऊँ ।

(गौतम आते हैं ।)

गौतम – भाई माधव ! क्यों ऐसे घबड़ाये हुए हो, ऐसे अकुलाये हुए हो ?

माधव – सावधान ! कपिलवस्तु के मुकुटमणि, सावधान ! व्याध लोग आप पर निशाना लगाये हुये हैं । आप को दुःख पहुँचाने के लिये अकुलाये हुए हैं; जिन पर आपने भरोसा किया है वे आप के शिष्य भड़काये गये हैं – आप व्यभिचारी हैं ऐसा समझाये गये हैं ।

गौतम – भाई ! पर ऐसा किसने किया, मैंने किसी के साथ बुरा बर्त्ताव नहीं किया है; फिर किस अपराध का बदला लिया ?

माधव – प्रभो ! क्या आप देवदत्त को नहीं जानते ? वह आप को इस वेष में भी चैन से रहने देना नहीं चाहते, आपके अनुयायियों को भड़काते हैं; उन लोगो की श्रद्धा हटाते हैं।

गौतम – बन्धु ! धैर्य्य धरो । देवदत्त जी समथ पर स्वयं अपनी भू । स्वीकारेंगे । यदि मैं ठीक मार्ग पर चल रहा हूँ तो अवश्य वह इस संग्राम में हारेंगे ।(कौडिन्य महाराज भद्रेय का आना ।)

कौडिन्य – कहिये सिद्धार्थ मुनि क्या समाधि से जागृत हो गये

गौतम – साधुजन ! अब मुझे संसारी नाम से न पुकारो, यह गौतम अब एकही कुटुम्ब एक ही गोत्र तथा एकही पंथ का नहीं है, अखिल ब्रह्माण्ड मेरा बन्धु है, उसी के नाते से मेरा बुद्ध नाम उच्चारो।

महानाम – शाक्य मुनि ! जब तक इन्द्रियों को न दमन कर लो, कामिनियों के हाथ से सेवा न बंद कर लो, तब तक बुद्ध के नाम से पुकारे जाने का स्वप्न में भी ध्यान न धारो।

गौतम – बन्धुओ ! तुम्हारी शंका मैं निवारण करता हूँ, तनिक बैठो पधारो। [सब बैठते हैं] हे सत्य के खोजने वालो ! शरीर को सुखाकर काष्ठवत् बनाने सेही सत्य का प्रकाश मिलेगा, ऐसी धारणा भ्रान्तिमयी है । जिस प्रकार किसी यंत्र को चलाने के लिये आग पानी तेल की आवश्यकता रहती है उसी प्रकार सत्य की खोज के लिये – अंतरात्मा में दिव्य सन्देश पहुँचाने के लिये निर्मल बुद्धि और स्वास्थ्य की जरूरत रहती है। जिस प्रकार मर्यादारहित संसार भोग विलास तथा रागरंग आदि ज्ञान मोक्ष के मार्ग में रुकावट स्वरूप हैं उसी प्रकार तप और व्रत भी महा विकट हैं, जो शरीर को बुद्धिहीन, तेजहीन बनाते जाते हैं और ज्ञानप्राप्ति तो दूर रही उसकी परछाई से भी हटाते हैं। सद्विचार, सत्श्रद्धा, सद्वचन, सद्वर्तन, सत्साधन, सद्उद्यम सत्स्मृति और सत्समाधि यही आठ प्रकारके पुरजे मिलने पर इस शरीर को जन्म मरण के चक्र से छुड़ाते हैं, और अंत में मोक्षपद दिलाते हैं ।

बाकी प्रतिमार्ग ठोकरें खिलवाते हैं, काँटों में घसिटवाते हैं,
और अंत में नरक के द्वार पहुँचा कर जब कहीं चैन पाते हैं ।
साधना निर्बाण को हो दुःख से ये भूल हैं ।
प्रेम श्रद्धा ज्ञान में ही प्राप्त सुख के मूल हैं ॥
नेह की आँखों से देखो, विश्व को, सब धूल हैं ।
अन्यथा यह जान लो – भगवान भी तृणमूल हैं ॥
आओ सींचे प्रेमजल से विश्व के उद्यान को ।
फिर फलें, फूलें मिलें वो रस का सब को ज्ञान हो ॥

महानाम-(बुद्धदेव के पाँव पर गिर कर) धन्य है ! भगवान बुद्धदेव, आप की अमृत वाणी ने हमारे अहंकार का नाश कर दिया, झूठे मार्ग से हटाकर हमारी कुमति का विनाश कर दिया । अहा, जिस वस्तु को पाने के लिये हमलोग इतने दिनों से निराधार, निर्जल रह कर शरीर को कष्ट दे रहे थे – वह केवल आप के एक उपदेश में मिलगया । भगवन् ! हमारी धृष्टता बिसारो; हमें शिष्य के रूप में स्वीकारो ! (सब चरण छूते हैं, बुद्ध सब को आशीष देते हैं)

बुद्ध – बुद्धधर्म के प्रथम पुण्यशाली अधिकारियों, जाओ, सत्य का असली मार्ग जगत पर प्रगट करो – देशसेवा करने के लिये कुछ आगा पीछा न करो ।

जाओ झंडा देशसेवा का है फहराना तुम्हें ।
विश्व को हो ज्ञात मानवधर्म, समझाना तुम्हें ॥
(सब शीश झुकाते हैं, बुद्धदेव आशीष देते हैं, सब जाते हैं ।)

अंक तीसरा । दृश्य दूसरा ।

—:o:—

काशी में धनाढ्य सेठ यश का आमोदभवन ।

(यश मित्र सहित मदिरा पान में लिप्त है, वेश्यायें नाच गा रही हैं, सामने भोजन रखा है ।)

यश—हाँ चलाव ! मदिराका दौर चलाव और राग रंग से तबियत बहलाव ।

१ मित्र—मगर मित्र, पहिले इस भोजन को पेट का शिकार बनावो, तब राग तान से आनंद पावो ।

१ वेश्या—जी हाँ, पहिले खाइये पीजिये, मदिरा पान से आनंद लीजिये; फिर हमारी कला पर ध्यान दीजिये ।

२ मित्र—लीजिये, लीजिये ।

जो करे पीने से इनकार कमीना होगा ।
क्योंकि तुम प्यार से कहती हो कि पीना होगा ॥

३ मित्र—(ग्लास हाथ में लेकर)

लाल अमृत में अमर पद का निशां रक्खा है ।
हम तो यह कहते हैं मरके हमें जीना होगा ॥

१ मित्र—(ग्लास खाली कर)

प्यारे हाथों से हमें पान करायें विष भी ।
फिर भी पीने के लिये वीर का सीना होगा ॥

१ मित्र—मित्रो ! आज कल वह पागल चाण्डाल गौतमबुद्ध अहिंसा पर व्याख्यान देता है कि कोई मांस न खाओ, मदिरा के ग्लास न उड़ाओ ।

२ मित्र—(नशे में) क···क···क्यों ?

१ मित्र—कारण कि जीवहत्या हमारा धर्म नहीं, मांसाहारी बनना मनुष्यों का कर्म नहीं ।

३ मित्र—तो क्या हम घास चबायें; बैलों की तरह से भूसा खायें ।

४ मित्र—अजी इस जरा सी बात का तो एक बहुत सहल उत्तर है ।

३ मित्र—क्या·····

४ मित्र—देखो न संसार में कितने बकरे—मुर्गी-बटेरें रोज कटती हैं ।

२ मित्र (नशे में] ला·····खों·····

४ मित्र—और फिर भी इनका अंत नहीं होता, ये बराबर रोज उसी तरह उसी हिसाब से हमें उसी मूल्य पर मिलती जाती हैं; इससे साफ २ प्रतीत होता हैं कि इन सब को काम में लाने के लिये अर्थात इनको खाने के लिये परमात्मा ने हमें दे रक्खा है ।

१ मित्र—और इसी लिये जिसने इन का स्वाद चक्खा है, वह भला कब उस जंगली के उपदेश को सुनेगा, पागल बनेगा ?

२ मित्र—और फिर इन से कैसे २ स्वादिष्ट उत्तम भोजन बन जाते हैं, जिनमें हम इतना आनंद पाते हैं ।

मूर्ख ने उपदेश में सब खो दिया ।
याद जो आया मुझे मैं रो दिया ॥

(रोता है ।)

१ मित्र—अरे, पर तुझ से कौन छुड़ाता है, जो निष्प्रयोजन तू आँसू बहाता है, यहाँ न तो गौतम है न गौतम का उपदेश है ।

२ मित्र—(रोकर) तो फिर क्या है ?

१ मित्र–केवल उसकी आलोचना हो रही है ।

२ मित्र (नशे में)·····उस·····सुलोचना को आग लगाओ । लाओ, मदिरा लाओ । और···गाना सुना···ओ,

यश–हाँ मित्र, इन बखेड़ों को हटाओ । राग, रंग से जी बहलाओ ।

अब तान से कान पवित्र बने अरु कंठ में मदिरा वास करें ।
तब नीलकंठ हम भी बनकर सुख मगन नाट्य अभ्यास करें॥
३ मित्र-इक ओर बजे वीणा सुमधुर इक ओर सरस्वति तान भरें।
फिर हम से रसिया वीर सभी अपनी जानें बलिदान करें॥

२ मित्र–चलाओ···च···ला···ओ···सु···र··· पति सी कन्या लो···रो···ना···च···ला···ओ ।

वेश्या–जो आज्ञा ।

गाना ।

रूप रसिक चमक दमक, रंग राग जमक झमक ।
वाणि मधुर लड़क ढलक चाल चपल चटक मटक ।
ठीक ठाठ अलक झलक पैसे वो आवेरी ॥ रूप० –
चंद्रबदन चतुर नारि अधर मधुर प्रेम भरी ।
जादू भरे नयन मारि प्रेम सों बुलावेरी ॥ रूप० –

सब–वाह, वाह, वाह !

यश–वाह वाह !

इनके मधुर गान को सुनकर पशु पक्षी तक चाह करें ।
दूना हो उत्साह भला फिर जगकी क्या परवाह करें ॥

भुवनमोहिनी ! जरा कोई पंचनद देश का गाना सुनाओ; हमारे कानों को सुरताल का ज्ञान कराओ ।

१ मित्र—हाँ—हाँ-बजाओ । गंधर्वसेन ! अपने मृदंग पर सर पटक के डमरू के शब्द गिटगिटाओ ।

(वेश्या का गाना)

गाना ।

कदी आवे ढोतन तै बिना, मेरी गूजरी रैन अजाबदी ।
दिलबर मेरा कि वे बोले हवा विरयों दीजियें जोले ॥
जल भुंज के जान होइयाँ कोले, जीयें भुंजदी सीख कबाबदी ॥
सब—वाह वाह !

(महानाम भिक्षा माँगने आता है)

महानाम—भाई ! क्षमा करना, मैं बिना समझे ऐसे नरक स्थान में भिक्षा के लिये घुस आया । मैंने तो यह समझा था कि यह किसी सज्जन पुरुष का निवासस्थान है । किसी धनाढ्य परोपकारी का मकान है, मगर यहाँ तो—

नरक सम सब दृश्य हैं तुम नरक के अवतार हो ।
ये बला सब हैं पिशाचिनि और तुम भूभार हो ॥

३ मित्र—लीजिये, मान न मान मैं तेरा मिहमान । एक तो बिना पूछे अंदर घुस आया और उस पर ये बातें सुनाता है । मारूँ बोतल या यहाँ से जाता है ?

महानाम-बाबा, क्षमा करो; मैं कुछ तुमसे लड़ने नहीं आया, झगड़ने नहीं आया। कारण, हमारा धर्म "अहिंसात्मक" है । लो जाता हूँ; मगर इतना अवश्य कहूँगा कि—

सम्पदा अरु प्रेमिका कब काम में ये आयंगी ।
भोज्य मदिरा सब तुम्हें मंझधार में ले जायंगी ॥
ये सदा चंचल नहीं विश्वास के आधार हैं ।
जो फंसा इनमें उसे धिक्कारता संसार है ॥

अब भी जागो सो चुके लो ज्ञान आ भगवान से ।
हो चुका जो हो चुका लो काम अन्तर्ज्ञान से ॥

१ मित्र—चल चलः—

सम्पदा हो पास में अरु प्रेमिका का हो निवास ।
उत्तमोत्तम भोज्य हो मदिरा बहे होके प्रकाश ॥
इन्द्रकानन सा बगीचा औ मिले उत्तम लिबास ।
फिर किसी की क्या करे चिन्ता वो क्यों होवे निराश ॥
धर्म सच्चा है यही औ दूसरी बकवाद है ।
जो तेरे मत में पड़े दुखिया है वो नाशाद है ॥

महानाम—मूर्खों ! क्यों अपने जीवन की नौका को मँझधार में डुबाते हो, क्यों उसपर पाप के बादल बरसाते हो ? देखो आग लगी है; उसमें न जाओ; पतंग की भाँति अपने प्राण न गँवाओ । आओ, अब भी आओ !

यश–कहाँ आओ ?

महानाम–महात्मा गौतम के पास आओ, वो तुम्हारे अंध विकार को ज्ञान रूपी उजाले से जगमगा देंगे, तुम्हें तुम्हारा असली रूप समझा देंगे, जितना तुम उनके उपदेश का अनुभव करोगे उतनाही अधिक सुख और आनंद तुम्हें प्राप्त होगा। पुरानी वस्तुयें जाती रहेंगी और उनके स्थान पर ईश्वरीय नियम, ईश्वरीय न्याय, ईश्वरीय पवित्रता व्याप्त होंगी । तब तुम जीवात्मा से परमात्मा बन जाओगे और तुम में अनन्त ज्ञानसुख का वास होगा–एक निर्मल ज्योति का प्रकाश होगा ।

तजो इस कामनाको और जा उपदेश तुम लेलो ।
प्रभू तमको खिलावें और तुम आनंद से खेलो ॥

(जाता है)

सब—खड़ा तो रह चाण्डाल! (सब उसे मारने जाते हैं)

यश—सच कहा, उस साधु ने सच कहा-इस झूठे मायावी धंदे में क्या रक्खा है। इन कामिनियों के जूठे शरीर में किसने आनंद का रस चक्खा है, जहाँ तक इनमें लवलीन होते जाओ वहाँ तक और नीचे जाना है। यश! यदि संसार में आने का असली यश कमाना है तो इन सब जंजाल को त्याग, भाग इन चुड़ैलों वो नागिनों को छोड़के भाग। देख! आग लग चुकी है, अब भी जाग! जिस प्रकार खान का मजदूर चमकीला हीरा पाने के लिये हजारों मन मिट्टी, खोद के बाहर फेंक देता है, उसी प्रकार तू भी असली सत्यता की प्राप्ति के लिये ऐयाशी के ये संसारी झूठे सामान खोद निकाल। चल, उस साधु महात्मा के कहने के अनुसार गौतम से उपदेश ले और अपनी मुक्ति का मार्ग बना—

रे मन ! ये कामादि सब खरे, नरक की खानि ।
तू जानत सुख देन हैं ये निसिदिन दुख दानि ॥
ये निसदिन दुख-दानि मित्र बनि प्रीति प्रकाशें ।
अंतर छुरी कटार मार तब यश धन नाशें ॥
चल गौतम के पास वही तोड़ेंगे बंधन ।
बहुत किया अपराध सँभल जा अबभी रे मन ॥

वेश्या-(यश को रोक कर) हां २ आप अकेले कहाँ जाते हैं ?

यश-हट जाओ, सामने से हट जाओ, अपना काला मुख बनाओ। (जाना)

गंधर्वसेन-हैं हैं, यहतो लुटिया उलट गई। किस्मत पलटगई!

(सब सिर पीटते हैं)

अंक तीसरा। दृश्य तीसरा

जंगल।

[भद्रवर्गीय कुमार इस जंगल में अपनी२ पत्नी सहित बिहार करने आये हैं, जिनमें से एक कुमार अविवाहित है, इस हेतु उस के लिये एक वेश्या को बुलवाया है। रात को जब यह मद्य पीकर अचेत हो गये तो वेश्या ऐसे समय उनके आभूषण लेकर भाग गई, तब सब एक साथ मिलकर उस वेश्या को ढूँढ रहे हैं।]

१ कुमार—बड़े लोग सत्य कहते हैं कि वेश्या के साथ चाहे कितनी ही भलाई करो, परन्तु वह अपनी नीचताई से मुख न फिरायेगी; अवश्य अपनी जाति पर आयेगी।

२ कुमार-अजी बिल्ली को चाहे कितनाही मिष्टान्न पक्वान्न खिलाओ, पर वह चूहे को देखते ही सब कुछ त्याग कर उसे पकड़ने के लिये दौड़ जायेगी।

३ कुमार—वेश्या धर्म गँवानेवाली, दुराचार फैलाने वाली स्वार्थ की तसवीर निराली, उसका क्या विश्वास करे।

४ कुमार—उसकी बातें सब हैं जाली—वह है दुष्कर्मों की ताली, चली गई सब करके खाली,—मिलने की क्या आश करे।

५ कुमार-छोड़ बखेड़ा घर को धाओ-व्यर्थ रुपये क्यों नष्ट बनाओ, लाभ नहीं पीछे पछताओ—यही बात अभ्यास करें।

[गौतम का माधव तथा अनेक शिष्यों के साथ आना]

गौतम—भाइयो! मैं अनेक जन्म के दुःखों को सहता हुआ इस घर रूपी शरीर के बनाने वाले को ढूँढ़ता रहा। वह मुझे म

मिला – परन्तु अब मैंने उसे पालिया है – मेरा चित्त संस्कार-हीन हो गया है:—

गह कारकं गवे संतो दुःख जाति पुनः पुनः ।
गह कारक दिट्ठोसि—पुन गेहं न काहसि ।
सब्बा ने फासका भागा गह कूटं विसंकितं ।
विसंखार गतं चित्तं तण्हानं खपमज्झगा ॥

माधव—यथार्थ है स्वामी—आप का कहना यथार्थ है, यह तृष्णा ही अद्भुत पदार्थ है । परन्तु इस जहरीली बस्तु को, एक ही ने क्षय किया और वह—
सब-कुमार सिद्धार्थ है.....

एक कुमार-(दूसरे से) इन से पूछो कदाचित् इन लोगों ने उस वेश्या को देखा हो—(सब आगे बढ़ते हैं)

दूसरा कुमार—हे मनुष्य के भेष में ईश्वर ! क्या आपने किसी स्त्री को इधर से जाते देखा है ?

गौतम—कुमार ! उस स्त्री को ढूँढ़ने का कारण ?

एक कुमार—कारण ? अपनी बुद्धि बिदारण और क्या कारण – भगवन् ! वह वेश्या थी जिसको हम लोगों ने अपने कनिष्ठ भ्राता के अविवाहित होने के कारण बिहार के हेतु बुलाया था जो रात्रि में हमें सोता हुआ देख हमें ठग गई – हमारे समस्त बहुमूल्य आभूषण ले भग गई !

दूसरा कुमार-परन्तु वह हमसे शत्रुता कर के कहाँ जायेगी, किसी न किसी दिन अपने किये की सज़ा पायेगी ।

गौतम-मनुष्य अपना शत्रु आप है – किसी दूसरे मनुष्य को अपना शत्रु समझना अंतरात्मा की झूठी थाप है । वह स्वयं काम से, क्रोध से, घृणा से, द्वेष से, जिह्वालोलुपता

और भोग विलासों से अपना नाश अपने हाथों कर डालत है, जान बूझकर इन जहरीले साँपों को पालता है–

शत्रुता या मित्रता अपने किये के भोग हैं।
अन्तरात्मा के निबल होने के ये सब रोग हैं।
दुःख के कारण स्वयं हम फिर किसे जा दोष दें।
त्याग के साधन बिना क्योंकर हृदय को तोष दें॥

३ कुमार—महाराज! आप की बातें हमारी समझ में नहं आइं, कृपया इसका भेद बतलाइये – हमें अनुग्रहीत बनाइये।

गौतम—कुमारो! तुम उस स्त्री को तो खोज रहे हो जिस ने केवल तुम्हें एक रात धोखा दिया है। परन्तु क्या कभी तुम ने अपनी आत्मा को भी ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है जिस के बिना तुम जन्म जन्मान्तर में लुटे जा रहे हो – मुक्तिमार्गसे हजारहों, योजन दूर छूटे जारहे हो?

३ कुमार—आत्मा! आत्मा तो हमारे शरीर के भीतर है उसे हम ढूढ़ने कहाँ जायें—जब वह स्वयं हमारे मनमन्दिर में बास करती है तो उसे कहाँ से खोज लायें।

गौतम—तो क्या तुम ने कभी उसका उपदेश माना है! वह, यथार्थ में क्या है, यह क्या तुमने जाना है? देखो, तुम लोग अज्ञानता के वश में यह समझते हो कि तुम प्रकृतिके नियमों पर विजय प्राप्त कर सकते हो – और दूसरों की इच्छा को अपने अधीन कर सकते हो–परन्तु अगर तुम अपनी आत्मा को ढूँढ़ पाते तो ऐसे समय में जब कि तुम्हारी प्रजा के हजारों अनाथ बच्चे दाने दाने को बिलख रहे हैं—एक २ टुकड़े २ के लिये तरस रहे हैं तुम लाखों रुपये खर्च कर इस जगह पर स्त्री के साथ बिहार करने न आते–तुम अब भी अपनी कृतघ्न-

ता पर, अज्ञानता पर, पाप और अहंकार पर, विजय प्राप्तकर सकते हो और आत्मविजयी बनकर आत्मा के आदेश मानने में मन लगा सकते हो ।

४ कुमार—भगवान् ! आपको अनेक धन्यवाद है कि आपने हम अंधों की आँखों को खोलदिया-हम कामान्ध बन ईश्वरीय नियम के विरुद्ध भागे जा रहे थे—हमें रोक कर हमारे सामने हमारे अपराधों को तोल दिया ।

हम लम्पट अज्ञानवश डूब चले मंझधार ।
कृपा किया गुरुदेव ने – कर दीन्हों पतवार ॥
कर दीन्ह पतवार – हमें मँझधार उबारयो ।
सबल किये उपदेश देय मन बाधा टारयो ॥
आत्मा हो मलहीन कृपा करि दीजे शिक्षा ।
हम लम्पट अज्ञान यही माँगत हैं भिक्षा ॥

गौतम—भाई ! न तो तुम लम्पट हो और न तुम्हारे शरीर या मन का कोई भाग ही नीच है—देखो, प्रकृति में कभी भूल नहीं हो सकती। तुम्हारी समस्त शक्तियाँ और वृत्तियाँ अच्छी हैं, उनको उचित रीति से काम में लाना ही बुद्धिमत्ता है। आओ, यदि तुम आत्मा की जिज्ञासा करना चाहते हो तो आओ, मैं तुम्हे बताऊँगा – तुम्हें तुम्हारी आत्मा का असली रूप दिखलाऊँगा । माधव ! इन लोगों को लेजाकर स्नान कराओ, मैं आता हूँ ।

माधव – जो आज्ञा – (माधव सबको लेकर जाता है – यश चिल्लाता हुआ आता हैं)

यश—घोर उपद्रव है—कठिन आपत्ति है—भारी विपत्ति है, कोई आओ, इस जलते हुए रोगी की दवा बताओ।

गौतम—सच है यश, सच है। बड़ा उपद्रव हो रहा है—सारा संसार अंधा बन जल रहा है। आओ, हम तुम्हारी आग बुझायें—तुम्हें ठंढ़े होने का उपाय बतलायें।

धर्म चक्र लवलेश रूप से आज तुम्हें समझायेंगे।
जलते हुए हृदय पर तेरे अमृत-वर्षा लायेंगे॥

यश—प्रभो। आप सर्वव्यापी हैं, सब कुछ जानते हैं, अब इस नीच को उबारिये। इस महा अधम को तारिये—

हो गया बेकार जीवन धर्म अपना खोदिया।
पाप की इक इक कली से आत्म जाल पिरोदिया॥
हो कृपा अब आप की मुझपर महा उपकार हो।
पार हो बेड़ा मेरा—उपदेश दो उद्धार हो॥

गौतम—न घबड़ाओ-प्यारे यश, न घबड़ाओ। यदि सबेरे का भूला संध्या को आजाये तो वह भूला नहीं कहाता है। उस रोगी का जीवन ज्ञान रूपी औषधि से अवश्य सुधर जाता है—मैं तुम्हें अवश्य उपदेश दूँगा—तुम्हारा असलीरूप तुम्हें अवश्य समझा दूँगा।

यश—धन्यवाद—प्रभो! ईश्वर! आप का अनेकानेक धन्यवाद है।

यश— गाना।

जीवन नैय्या मोरी पार लगाओ।
ढाल उपदेश का दे सबल बनाओ॥ जीवन०—
निराकार आत्मा को मेरे ज्ञान दियो साकार कियो।
कायर वो पामर नर मोसम आज प्रभू ने तारदियो॥जी०—

(जाना)

अंक तीसरा । दृश्य चौथा ।

राजगृह में मगध देश के राजा का यज्ञमंडप ।

(महाराज बिंबसार द्वारा निमंत्रित अनेक राजे महाराजे उपस्थित हैं, पंडितराम चन्द्र अनेक ब्राह्मणों सहित यज्ञ की आहुति कुण्ड में देरहे हैं, देवदत्त भी साधवेष से वहाँ विराजमान है)

रामचन्द्र—या देवी सर्व भूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता
नमः तस्यै नमः तस्यै नमः तस्यै नमो नमः
श्री द्रव्य कर्तृक भगवति नमो नमः । स्वाहा ।

सब ब्राह्मण—स्वाहा-स्वाहा- (यज्ञ में आहुति डालते हैं)

रामचन्द्र – महाराज ! भगवती का पूजन तो होगया, अब बलिप्रदान प्रारम्भ करना उचित है, नव सहस्र बलिदान होना अधोचित है ।

बिंबसार – ब्रह्मदेव ! आज के इस यज्ञ में जो २ वस्तुयें देवी के प्रसन्न करने के लिये आवश्यक हों मंगा लीजिये, बस यज्ञ फलीभूत हो ऐसा प्रयत्न कीजिये ।

रामचन्द्र – तो एक २ बलिदान पर सहस्र मुद्रा दक्षिणा दिलाइये और हम ब्राह्मणों के मुख से आशीर्वाद पाइये ।
अब और बिलम्ब रहे क्योंकर, निष्फल है, बेर नहीं अच्छी ।
बस शीघ्र मंगावें मुद्रा अब शुभ कार्य में देर नहीं अच्छी ॥

बिंबसार – हाँ २ लीजिये, मुद्रा मैं मंगाता हूँ, आप बलिदान प्रारम्भ कराइये ।

रामचन्द्र—जो आज्ञा! लाओरे, बलिदान के बकरे को लाओ।

(एक ब्राह्मण एक बकरे को लाकर सामने खड़ा करता है, सब उसकी पूजा करते हैं रामचन्द्र खड्ग सम्हालता है।)

राम०—ओम्! खड्गाय खर धाराय शक्ति कार्यार्थ तत्परः
बलिश्छेद्य स्त्वया शीघ्रं खड्गनाथ नमोस्तुते।

(जैसे ही रामचन्द्र बकरे को मारने के लिये खड्ग तानता है, इसी समय गौतम प्रवेश करते हैं)

गौतम—शांत पापम्! शांत पापम्! ब्राह्मणों! पहिले इस गौतम के शरीर को टुकड़े २ करो, पश्चात् इस अबोल गरीब बकरे का प्राण हरो।

(सब स्तंभित हो जाते हैं, रामचन्द्र गुस्से से काँपने लगता है, देवदत्त उसे उसकाता है)

देवदत्त—(धीरे से) **रामचन्द्र जी! यही चाण्डाल आप लोगों की वृत्ति के मार्ग का रोड़ा है, यही आप के अपयश के कष्ट का फोड़ा है।**

रामचन्द्र—(स्वयं) **नीच को आना था तो थोड़ी देर बाद आता; हमें दक्षिणा तो मिल जाती, परन्तु इसने आकर सब प्रयत्न मिटा दिया; हमारा बना बनाया सोने का घर राख बना दिया।**

जी में आता है यही, श्राप इसे दूँ आज।
दिखलाऊँ संसार को, ब्राह्मण की आवाज़॥

विंबसार-अहा! आज हमारे शुभ सितारे हैं, जो भगवान गौतम यहाँ पधारे हैं।

राम०-(स्वयं) **शुभ सितारे हैं या अब तुम्हारे लिये रौरव के अंगारे हैं। मूर्ख! मुझ ऐसे महान ब्राह्मण के होते हुए एक पागल को मान देता है। एक गीदड़ को सिंह का स्थान देता है?**

बिंबसार-आप के पधारने से इस यज्ञ ने शोभा पाई है। हमारी बहुत दिनों की आशा बर आई है।

राम०-(स्वयं) यज्ञ ने शोभा नहीं पाई है, वरन् तुम्हारी कम्बख्ती आई है।

बिंबसार—परन्तु भगवन्! इस महान यज्ञ में बलिदान के रोकने से आपका प्रयोजन ?

राम—(स्वयं) प्रयोजन यही है कि पशु के मांस के बदले अब नरमांस खाओ, इस पाखंडी को देवी की भेंट चढ़ाओ।

गौतम—हे श्रद्धालु नृपतिगण! पूजनीय ब्रह्मन्! इस होम, इस बलिदान, इस यज्ञ के करने का क्या तात्पर्य, क्या कभी आपने यह भी विचारा है? क्या यही बलिदान स्वर्ग प्राप्त करने का सहारा है? हे भारत के संतानो! तुम्हारी पवित्रता तुम्हारी सात्विकता तुम्हारी, सुहृदयता-कहाँ भाग गई? क्या तुम्हारी सभ्यता एक दम तुम्हें त्याग गई? आत्मापाप शरीर के बलिदान से धुल नहीं सकता। याद रखो! कि बलिदान से अथवा रक्त से, क्रियाकांड से अथवा मंत्रोच्चार से अंतर की मैल धुल नहीं सकती। तुम्हारे पापों को भस्म करने की गर्मी इस अग्नि-ज्वाला में नहीं है, तुम्हारे निर्वाण का द्वार इस यज्ञ कुण्ड में नहीं है। इसका रास्ता पण्डितोंकी वाणी में नहीं है, वरन् यह शक्ति तुम्हारी अंतरात्मा में है। वह अग्नि तम्हारे हृदय गर्भ में है निर्वाण पद पाने की शक्ति तुम्हारे हाथों में है, इन्हें काम में लाओ, दूसरे का कष्ट अपना कष्ट समझ जैसा विचार वैसी वाणी, जैसी वाणी वैसा कर्म तथा जैसा कर्म वैसा फल, इस ईश्वरीय अनिवार्य शास्त्र को भूल न जाओ, प्रेम प्रेम से प्राप्त होता है, द्वेष से नहीं। दया दया से मिलती है क्रूरता से नहीं। अमरत्व

अहिंसा से फलीभूत होता है, हिंसा से नहीं। अब भी पश्चात्ताप के आंसुओं से अपने हृदयपट को धोकर साफ करलो और याद रक्खो कि अहिंसा ही परम धर्म्म है, निर्वाण पदका सत्य मार्ग है। राजन्! "अहिंसा परमो धर्मः।"

(महाराज विंवसार गौतम के चरण पर शीश नवाते हैं)

विंवसार—भगवन्, इस पापी को क्षमा करो। आपके वचनामृत से मेरे दयाहीन हृदय में दया का झरना बहने लगा! प्रभो, आखों पर पड़े हुये पापान्धकार के पर्दे खुल गये, आज इस अंधे के ज्ञान चक्षु खुल गये, अब इस पापी पर दया लाइये, इस भयानक संसारसागर में डूबते हुए एक निःसहाय को बचाइये, बचाइये।

देवदत्त—बिंवसार! बिंवसार! यह तुम क्या करते हो किस की शरण जाते हो! ऐसे २ विद्वान ब्राह्मणों को त्याग कर एक राजसीक प्रकृति के दंभी साधु का मान बढ़ाते हो! यह पाखंडी तुम्हारे सनातन धर्म को, तुम्हारे वेद शास्त्रों को नास्तिकवाद बतलाता है। ऐसा है यह धर्मघाती और इसके चरणों शीश नवाते तुम्हें लज्जा नहीं आती! छिःछिः!

विंबसार—बस देवदत्त! जिह्वा सँभालो! ऐसे अश्लील शब्द निष्कलंक भगवान बुद्ध की मर्यादा में न निकालो।

राम०(स्वयं) बस लुटिया डूब गई, अपनी आशा की डोर बीच ही में टूट गई। सारी किस्मत फूट गई।

देव०-विंबसार! मैं पुनः कहता हूँ कि अंधे न बनो; बुद्धि को काम में लाओ; एक लम्पट साधु के शिष्य बन कर कहीं ऐसा न हो कि पीछे से पछताओ।

राम०---राजन्! जो महाज्ञानी धर्मावतार श्री देवदत्त जी कहते हैं यही शास्त्र वाक्य है। इसे मान जाओ।

बिंबसार--बस अधिक सिर न खपाओ; जाओ सब यहाँ से भाग जाओ, इस अग्निकुण्ड को अग्नि लगाओ, यह सब क्रूरता के चिन्ह यहाँ से मिटाओ ।

राम०-परन्तु महाराज! आप यज्ञ करो अथवा न करो, परन्तु हमारी दक्षिणा तो दिलाओ ।

बिंबसार—बस हट जाओ, सामने से हटजाओ (द्वारपालसे) द्वारपाल!इन सबअत्याचारी ब्राह्मणोंको बाहर निकालो, यह बला मेरे सर से शीघ्र टालो ।

गौतम—राजन् ! इतना क्रोध न दिखाओ, इन बिचारों की आँखों पर मोह और मद के पर्दे पड़े हैं, ये अपने हित का बातें नहीं समझते, इनकी दशा ठीक उस कुत्ते की सी है जो बैठा हुआ सूखी हड्डी चबाता है और उसकी रगड़ से अपने गलफड़ों से निकले हुए रक्त के स्वाद को हड्डी का स्वाद जान अपनी तृप्ति समझ आनन्द मनाता है ।

राम०-बस जिह्वा संभाल, एक ब्राह्मण की तुलना कुत्ते से दी जाये; परमात्मा ! तू कहाँ सो गया है! क्यों न इन पापियों पर अग्नि की वर्षा बर्साओ, इनका चिन्ह तक मिटाओ । बस इस ठौर ठहरने वाला अज्ञानी है, यह सब जीव नरकगामी हैं!

बिंबसार०—निकालो, इन सबको, शीघ्र निकालो ।

द्वार०—(ब्राह्मणों को धक्का देकर) निकल जाओ ।

राम०—जाता हूँ, जाता हूँ, भगवन ! यह सृष्टि उलट क्यों नहीं जाती ! आहि आहि आहि (सब ब्राह्मण जाते हैं)

देव०—राजन् ! आज तुमने बड़ी मूर्खता का काम किया है जो ब्राह्मणों का अपमान किया है ।

बिंबसार—बस देवदत्त, इन बातों में जिह्वा न हिलाओ,

कुशल इसी में है कि यहाँ से चले जाओ (गौतम से) भगवन! हमें अब क्या करना चाहिये यह बताइये।

गौतम—राजन्! इन अबोल निर्बोध जन्तुओं के लिये एक पशुशाला बनवाइये और आज से आप के राज्य में कोई भी हिंसा न करे ऐसी घोषणा कराइये।

बिंबसार—आप के आज्ञानुसार सब कार्य किये जायँगे। अहा! आज इन उपदेशों के सुनने से चित्त कैसा निर्मल हो रहा है।

देव०-चित्त निर्मल हो रहा है या तू इस चांडाल पाखंडी के फेर में पड़कर अपने आप को खो रहा है।

बिंबसार—बस देवदत्त! जिह्वासंभाल-ऐसे कटुवचन मेरे भगवान की मर्यादा में न निकाल!

गौतम—राजन्! क्रोधित न हो-बिचारे देवदत्त अज्ञान और रागद्वेष में जकड़े हुए हैं-इन में इनका कोई दोष नहीं, मेरा इनपर कोई रोष नहीं, यह दया के पात्र हैं, इनका तिरस्कार न करो.....

देवदत्त०—[आवेश में] ओ भिखारी! तू मुझे क्या दया दिखलायेगा-जिस जिह्वा ने यह शब्द कहे हैं मैं उस को बाहर निकाल लूँगा। जिस हृदय से यह शब्द निकले है मैं उसके टुकड़े २ कर डालूँगा, उन आँखों को जो मेरी ओर दया का ढकोसला दिखाती हैं फोड़ डालूँगा। अभी तक मेरी नस २ में क्षत्रियत्व का रक्त है-तुझ ऐसे पामर से किस प्रकार बदला लेना चाहिये यह देवदत्त अभी इस सारे संसार को दिखायेगा।

[अचानक एक क्षण में देवदत्त गौतम को अग्निकुण्ड में ढकेल देता है—सहसा बड़े वेग से

देवदत्त का गौतम को अग्निकुंड में ढकेलना—वेग से जलवृष्टि का होना—आग के अंगारों का पुष्प बन जाना।

भारत-प्रेस, कालापुरा, काशी।

जलवृष्टि होती हैं, आगके अंगरे सब पुष्प बन जाते हैं, गौतम उस पर बैठे हुए नजर आते हैं, देवदत्त भागजाता हैं]

बिंबसार–बोलो श्री बुद्धदेव की जय !

टेबला ।

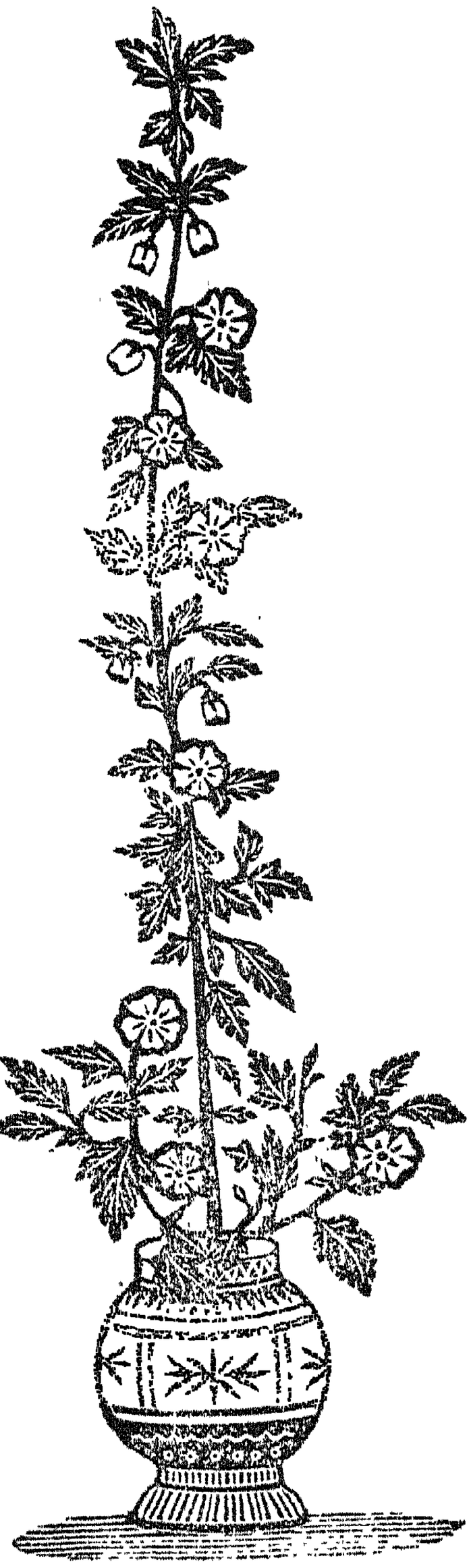

अंक तीसरा। दृश्य पाचवां ।

जगत

(माधव तथा गौतम के शिष्य भजन करते हैं ।)

गाना ।

प्रभु की लीला बरनि न जात ।
परदुख भंजन जगत निरंजन,
सनकसनंदन अरपें तन मन,
करिये बंदन – कर सुख अंजन,
तों सम, और न कोउ लखात ॥ प्रभु०-
जय जगत्राता, तू पितु माता, भगिनी भ्राता, जगदाता ।
तेरी कृपा कोई जो पाता, धन्य २ वह नर हो जाता ।
अहो बिधाता, तूही माता, सबमें तू साक्षात् लखाता ॥प्रभु०—

[गौतम आते हैं, सब उठ कर दण्डवत करते हैं ।]

गौतम-प्यारे शिष्यो ! बस प्रेम करो, प्रेम ही से मुक्ति पाओगे, प्रेम ही एक वह भारी पोत है जिस पर सवार होकर तुम भवसागर से पार हो जाओगे।

गाना ।

प्रेम सकल ऊँचा पद पावे,
प्रेम प्रभू के ढिग पहुँचावे ।
प्रेम की गंगा बह रहीं, भवसागर के बीच ।
मन ऊसर सींचन चहो, लो इस जल से सींच ॥

प्रेमसार प्रेमाधार, प्रेम ही तारनहार ।
लीला याकी अपार, करो प्रेम का व्यापार ॥
यही मोक्ष पदलावे ॥ प्रेम०-

माधव-(स्वयं) हाय ! इस शब्द ने मेरे हृदय के घाओं को फिर से हरा बना दिया, कलेजे पर छुरा चला दिया। (प्रगट) प्रभो ! आज्ञा हो तो जाऊँ, भिक्षा माँग लाऊँ ?

गौतम-जाओ माधव ! सब्ध के साथ जाओ, भिक्षा माँग लाओ। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम मनोवाञ्छित फल पाओ।

(माधव तथा कई शिष्यों का झोली लेकर जाना, देवदत्त का दीन अवस्था में क्षमा माँगने आना)

देवदत्त-हे कृपालु ! हे पतितपावन ! इस पापी को क्षमा करो, इस जलते हुए दिल पर आशीर्वाद के जल छिड़क मन की व्यथा हरो । (गौतम के चरणों पर गिर पड़ता है)

गौतम—अरेरे, यह क्या करते हो! भाई देवदत्त ! यह तुम्हारी स्थिति कैसी होगई, बोलो बोलो, आँखों में आँसू न लाओ, मेरे चरण छूकर मुझे लज्जित न बनाओ ।

देवदत्त—भगवन् ! मैं आप के मुख से इतने मीठे नहीं वरन तिरस्कार भरे शब्द सुनने आया हूँ । इस हेतु आप जब तक इसपापी को, इस नीचको, तलवार की धारके तुल्य शब्द से हृदय पर आघात न करेंगे; हृदय शांत न होगा ।

गौतम—क्या कहा, तुम तिरस्कार के पात्र हो ? नहीं नहीं, मेरे भाई ! तुम्हारे पश्चात्तापजलसे तुम्हारे किये हुए सारे अपराध धुल गये । तुम निराश न हो, तुम पूर्ण रूप से शुद्ध हो गये। भाई जाओ, मनको दुःखित न बनाओ ।

देवदत्त—नहीं नाथ ! जब तक आप मुझको अपनी शरण

मैं न लेंगे, मैं यही समझूँगा कि आप ने मुझे क्षमा नहीं किया, मेरा अपराध बिसार नहीं दिया—

तुमको तज के हम जाँय कहाँ,
तुमहीं अवलम्ब हमारे हो।
इस नीच अधम पापी के तारक,
तुमही एक सहारे हो॥
प्रतिपाल करो सगरे जगको,
फिर काहे बिमुख हमारे हो।
बस एक दफे मुख से कह दो,
सगरे मम दोष बिसारे हो।

गौतम—भाई! जो आत्मा पश्चात्ताप से विशुद्ध हो जाये उसके स्पर्श से तो स्वयं गौतम पवित्र होजाता है। वह स्वयं अपने आत्मा की जीवन-नौका का बहादुर मल्लाह बन जाता है। भाई! तुम्हारे कर्म के जादू ने तुम्हारी पुण्य-यात्रा के बीच में पड़े हुए रोड़ों को गला दिया, तुम्हारा मार्ग क्लेशरहित बना दिया। फिर भी यदि तुम मेरे साथ रह कर मुझे आनंद देना चाहते हो तो प्रसन्नतापूर्वक रहो, मुझे अनुगृहीत करोः—

धन्य धन्य है भाग्य मेरे शुभ घड़ी ये आई।
मिला मुझे है आज सुहृदयी तुमसा भाई॥

देवदत्त-बस आज से अपने पाप का विनाश हो गया, जीवन का दीपक प्रकाश हो गया। आप की स्नेहमयी अमृत वाणी ने आत्मा की फुलवारी को लहलहा दिया; हृदय को सुगन्धमय बना दिया।

(रामचंद्र आता है)

राम०-ठहरो, ब्रह्म की संतान, ब्राह्मण को श्वान कहने वाले, ठहर जाओ, या तो आज मुझसे शास्त्रार्थ कर मेरी शंका का समा-

ध्यान करो या अपने किये हुए पापों का प्रायश्चित्त करो।

देवदत्त—रामचन्द्रजी ! मैंने बहुत ठोकरें खाई हैं, तुम तो न खाओ, भलाई इसी में है कि प्रभु की शरण आओ ।

राम०—अपने मुख पर ताला लगाओ, पहिले मुझको शास्त्रार्थमें हराओ, पीछे कोई ऐसे शब्द मुख पर लाओ । वृथा अपने बोलकी पोल न दिखाओ

गौतम – आओ भाई, आओ, तुम्हारी शंका का समाधान मैं करूँगा, मुझे बताओ ।

राम-०तो बोलो तुम ब्राह्मणों को इतनी कुदृष्टि से क्यों देखते हो? जो धर्म ग्रन्थ के सबसे बड़े ज्ञाता हैं उन पर कुवाक्यों की बौछार क्यों फेंकते हो ?

क्या बिगाड़ा है तुम्हारा जो घृणा करते हो तुम ।
किस लिये अन्याय से मम जीविका हरते हो तुम ॥

गौतम—भाई ! मैं ब्राह्मण को जिस ऊँची दृष्टि से देखता हूँ कदाचित् संसार में और किसी को नहीं देखता । इन्हीं के रचे हुए ग्रन्थों को पढ़कर मैं आज इस दशापर पहुँचा हूँ ।

राम०—और उसका बदला तुम हमें लाञ्छन से पारितोषिक रूप में देते हो, हमें श्वान इत्यादि घृणायुक्त शब्दों से भूषित करते हो !

गौतम-द्विजवर ! जिस प्रकार सफेद रंग पर काला रंग चढ़ने से सफेद नहीं कहलाता, उसी प्रकार यदि ब्राह्मण स्वार्थ रूपी काले रंग से अपने हृदय को रंगा ले तो वह ब्राह्मण नहीं रह जाता । पूर्व समयके ब्राह्मण क्या थे, उनका क्या धर्म था इसका क्या आप को ज्ञान है ?

राम०-क्या है ? यदि तुम्हें मालूम हो तो सुनाओ देखूँ, तुमने

कहाँ तक हमारे बनाये ग्रन्थों का अध्ययन किया है जरा हमें भी बताओ।

गौतम-प्राचीन समय के ब्राह्मण संयतात्मा और तपोधन थे। वे न अपने पास धन रखते थे न भोजन के लिये धान्य का संग्रह करते थे। उनका स्वाध्याय ही धनधान्य था। लोग वलि वैश्य देव में जो भाग निकाल कर द्वार पर रख देते थे उसी को खा कर वे लोग अपना तथा अपने कुटुम्ब का निर्वाह करते थे और इस प्रकार अजेय, अबाध्य और धर्म के रक्षक होते थे। वे केवल यज्ञ के लिये, केवल मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये चावल घी तेल इत्यादि गृहस्थों से माँग लाते थे और उसी से अग्निहोत्रादि करते थे। उनके यज्ञों में किसी भी पशु की हिंसा कभी नहीं होती थी। जब तक उन लोगों में ऐसा आचरण था हम लोग उन्हें सब से बढ़ कर मानते थे वरन उन्हें साक्षात् ईश्वर का अवतार जानते थे।

राम-और अब ?

गौतम - परन्तु अब धीरे २ ब्राह्मणों की प्रकृति बदलने लगी, उनके सिर पर, स्वार्थ लालच की आंधी चलने लगी। दूसरों के अच्छे २ गृह आभूषण, स्वादिष्ट भोजन देखकर उनके मुख से भी लार टपकने लगी। उन्होंने महाराज इक्ष्वाकु को जाकर यज्ञ करने के लिये भड़काया। लाखों रुपये की सम्पत्ति दक्षिणा रूप से हथियाया और अश्वमेध, पुरुषमेध, वाजपेयादि यज्ञ करके सहस्रों घड़े दूध देने वाले जीव हजारों अबोध जानवरोंका खून बहाया, जिसे देख कर देव पितृ चिल्लाने लगे। ऐसे समय अवकाश देख राक्षसगण इनकी तृष्णा बढ़ाने लगे और यह ब्राह्मण जो किसी समय न्याय के अवतार थे, धर्म के कर्तार थे, पापकर्म कर झूठे और स्वार्थ पूर्ण मंत्र सुना आर्यावर्त की महिमा घटाने

लगे और घोर पाप कमाने लगे। अब आपही बताइये जब ब्राह्मणों की ऐसी दशा है यह हाल है तो वह जन्म के ब्राह्मण हैं, परन्तु कर्म के चाण्डाल हैं !

जीवका पालक जहाँ हिंसा करन का ज्ञान दे।
है असम्भव ऐसे जनको शूद्रतक भी मान दे॥

राम०-बस करिये गौतम जी ! बस करिये। आज मुझे ज्ञान हो गया कि मैं ब्राह्मण नहीं चाण्डाल हूँ, अपने देश का अपनी जाति का, अपने कर्तव्य का काल हूँ। सोचो ! भारत के ब्राह्मणों ! अपनी दशा विचारो ! तुम ही ने भारतवर्ष का कैसा नाश किया है। रईसों की चापलूसी करके उन्हें अपने मतलब के मंत्र बता २ उनसे धनोपार्जन कर, गरीबों के गले पर धर्म की दुहाई देकर अत्याचार की छुरी फेर २ कर परमात्मा तक को हैरान बना दिया और उसका परिणाम यह हुआ कि आज तुम शूद्र से भी गिरे हुए हो, महा नीच बन गये हो।

ब्राह्मण बन मत अब तजो अरु क्षत्र तजो तुम क्षत्रिय का।
जीवनपालन के साधन का अवलम्ब धरो तुम क्षत्रिय का॥
यदि भूल किया तुम डूब गये फिर देश रसातल जायेगा।
बस तुम्हरे ही कर्मों कारण यह देश गुलाम कहायेगा॥

(रामचंद्र गौतम को शीश नवाकर जाता है)

(सारथी चन्न तथा पुरोहित आकर गौतम को शीश नवाते हैं।

गौतम—ओहो प्यारे चन्न ! पुरोहित जी, आप कहाँ से आ गये ? धन्यबाद है ईश्वर का कि हम अपने मित्रों को आज पा गये, कहिये, महाराज इत्यादि तो अच्छे हैं ?

चन्न—प्रभो ! आज आपके दर्शन से हृदय प्रफुल्लित हो गया, आपके वियोग में देवी यशोधरा तथा महाराज महा-

रानी की क्या दशा है यह वर्णन करने की शक्ति मेरी जिह्वा में नहीं है। बस अब कृपया कपिलवस्तु की ओर का विचार करिये। महाराज शुद्धोधन की यह प्रार्थना स्वीकार करिये।

गौतम—भाई ! यह निमंत्रण मैं सम्मानपूर्वक स्वीकार करता हूँ, जाओ जल्दी जाओ, पिता जी को यह संबाद सुनाओ कि आपका पुत्र आप से क्षमा की भिक्षा माँगने आता है [पुरोहित से] परन्तु पुरोहित जी ! आप चुप क्यों खड़े हैं, यह तो बताइये।

पुरोहित—प्रभो ! आपने देवदत्त जी पर कौन सा मंत्र चलाया जो इन्हें महा क्षत्रिय से एक दम संन्यासी बनाया ?

देवदत्त-पुरोहित जी ! वास्तव में आज एक सर्प एक बकरी हो गया। वह हमारा घमण्ड, वह दंभ सदा के लिये सो गया।
जो मस्तक दंभ से पूर्ण रहा वो ज्ञान के नीर से साफ हुआ।
जो द्वेष कुकर्म किये हमने वो प्रभु गौतम से माफ हुआ ॥

पुरोहित—तथास्तु ! आप भी अवश्य आइयेगा, हमें भूल न जाइयेगा।

गौतम—पुरोहित जी ! जहाँ हम हैं देवदत्त भाई वहाँ हमारे साथ हैं। यह तो हमारे दाहिने हाथ हैं। अब आप लोग जाइये हमारा संदेशा हमारे माता पिता को कह सुनाइये।

चन्न और पुरोहित-जो आज्ञा ! (पुरोहित वो चन्न जाते हैं, सरला दौड़ी आती है)

सरला—हे कृपानिधान ! हे प्राणिमात्र के पिता, इस अबला की एक बिनती सुनते जाइये।

गौतम—बहिन ! इतना न घबराओ ! मैं तुम्हारी सब बातें जानता हूँ, आओ मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें आशीश देता हूँ कि तुम मनोवाञ्छित फल पाओ !

सरला—[देवदत्त को देखकर] हैं ! यह कौन, देवदत्त ?

देवदत्त—बहिन ! मुझ से इतना भय न खाओ । हा, मैंने तुम्हारी आशाओं का नाश कर दिया ।

गौतम—बस देवदत्त जी ! उन बातों को स्मरण कर हृदय को दुःखित न बनाओ; अब चलो आओ [सरला से] बहिन तुम भी हमारे साथ आओ ।

सरला—जो आज्ञा, प्रभु जी ! [सब जाते हैं]

अंक तीसरा—दृश्य छठवां।

कपिलवस्तु का राजमहल।

[यशोधरा तथा मालती बातें करती हैं]

मालती—बहिन यशोधरा! आज तो बहुत दिनों पश्चात तुम्हारी आशा वर आयेगी, तुम्हें आज अपने प्राणनाथ की नयी-हर मूर्ति दर्शायेगी [यशोधरा नीची गरदन कर लेती है] **हैं! तुमने सिर क्यों झुका लिया; मुख उदास क्यों बना लिया?**

यशोधरा—बहिन! जिसका स्वामी अमरपद देनहारा हो, जिसका कंत संसार के तारने का एक सहारा हो, वह उसके दर्शन के समय, उसके पददर्शन के समय यदि उदास हो जाय तो उससे बढ़ कर अभागिनी और कौन होगी?

मालती—तो फिर तुम्हारे सिर नीचा करने का कारण?

यशोधरा—बहिन! मैं अपने हृदयदर्पण में अपने स्वामी की पवित्र मूर्ति देख कर आनन्दित हो रही हूँ। आज मुझे साक्षात दर्शन होंगे यह सोच कर गद्गद हो रही हूँ।

गाना।

धन भाग्य मेरे आँगन आवें प्राणनाथ सरताज।
मन की पूरण आशा मेरी सारी होगी आज॥ धन०—
पतिचरणन निज आँसुन से धो मन नैवेद्य चढ़ाऊँगी।
आत्म-अर्घ में भक्तिपुष्प से पूजन करने पाऊँगी,
स्वामि नाम की माला फेरूँ यही मेरा अब काज॥ धन०—

मालती—धन्य हो बहन ! ऐसा भला कौन है जो तुम्हारे उपदेशों से न शांत हो। तुम भारतवर्ष की सती का एक जीता जागता दृष्टान्त हो [सामने देख कर] वो देखो; सामने से वो अकेले तुम्हारे प्राणनाथ आ रहे हैं; अब मैं जाती हूँ।

(मालती जाती है, गौतम आते हैं, यशोधरा शीस नवाती है)

यशोधरा—आइये, मेरे प्रभु ! मेरे नाथ ! बिराजिये, इस सून-सान झोपड़ी को अपने अलौकिक रूप से साजिये।

गौतम-देवि ! आज यह अपराधी तुमसे क्षमा की भिक्षा माँगने आया है, जिसने तुम्हारे हृदय को असह्य वेदना पहुँचाई वो कठोर हृदयी तुमसे उदारता की याचना करने आया है।

यशोधरा—हृदयेश ! प्राणनाथ ! दासी को न लजाइये। ऐसे शब्द न सुनाइये। वरन प्रभो ! पापिन पर दया दिखा अपनाइये।

गौतम-पापिन कौन ? तुम ! तुमतो विशुद्ध प्रेम की जीवित मूर्ति हो, पवित्रता की अवतार हो, दयापूर्ण हो, उदार हो। जिस क्रूरात्मा ने तुम्हारा दिल दुखाया, तुमको इतना कष्ट पहुँचाया फिर भी तुम उससे इतना प्रेम, इतनी ममता दिखाती हो। मुझे दुतकारने के बदले अपने को पापिन समझती हो।

यशोधरा—स्वामी ! क्या भारतवर्ष की शैली बदल गई जो दासी अपने स्वामी को फटकारेगी ? क्या हमारी पूर्व मातायें सीता, शकुन्तला, दमयन्ती सावित्री की महत्ता टल गई जो आज स्त्रियें अपने पति को दुतकारेंगी ? नहीं नहीं, वरन अब भी भारत की वह महिमा है कि पति चाहे कैसा ही अनुचित व्यवहार अपनी स्त्री से करे फिर भी आर्यावर्त की कन्यायें सदा अपने पति की आरती उतारेंगी और नाथ ! आप ने तो मेरा

मस्तक ऊँचा बनाया है, जिसका पति विश्वविजयी हो, जिसका कंथ साक्षात् ईश्वर का अवतार हो; जिसके विनीत भावों के वश सारा संसार हो वह आज शोक मनाये; अपने ईश्वर को कटुवचन सुनाये तो उससे बढ़ कर नीच और कौन होगा।

(शुद्धोधन, पुरोहित, केशवचन्द्र, गौतमी, चन्न, माधव तथा राहुल कुमार आमात्य के साथ आते हैं गौतम सबको शीस नवातें हैं)

गौतम—माता पिता के चरण कमलों में प्रणाम !

शुद्धोधन, गौतमी-आओ मेरे प्राण ! तुम्हारा सदा हो कल्याण !

शुद्धोधन-आज की घड़ी धन्य है कि मैं अपने प्रिय पुत्र को बुधत्वरूप में दर्शन कर रहा हूँ।

गौतम-माता पिता ! मेरे अपराध को क्षमा करो !

गौतमी-पुत्र ! ऐसी बातें ध्यान में न लाओ, तुमने तो आज हम लोगों का मस्तक ऊँचा किया। माता के दूध की लाज रक्खी है; मेरी कोख को पवित्र बनाया है। आज मुझे भी घमण्ड से अपने को रघुपति की मांता से बढ कर कहने का समय आया है (राहुल कुमार से) **पुत्र राहुल ! इधर आओ, अपने पिता के चरणों पर शीश नवाओ।**

राहुल०-(गौतम को प्रणाम करके) **अहा ! इस सुन्दर वस्त्र में मेरे पिता कैसे सोभायमान हैं ! पिता जी के चरणों में दास का कोटि कोटि प्रणाम है !** (गौतम उसके शीश पर हाथ फेर कर आशीष देते हैं)

गौतम- (केशवचन्द्र से) **केशवचन्द्र जी! आज आप को मैं एक सुसम्बाद सुनाऊँगा।**

केशव०-प्रभो ! आप के दर्शन से बढ़ कर और कौनसी बात की प्रसन्नता होगी !

गौतम—नहीं केशवचन्द्र जी ! आज मैं आप के हृदय की आशा पूर्ण करूँगा (सरला को बुलाते हैं) बेटी सरला ! इधर आओ। (सरला लजाती आती है)

केशव०—कौन, मेरे जीवन का सहारा ! एक अन्धे की आँखों का तारा !

[उसको हृदय से लगाते हैं]

गौतम—बेटी सरला ! मैंने तुम्हें आशिर्वाद दिया था कि तुम्हारी आशा पूर्ण हो। आज उसे पूर्ण बनाता हूँ; दो बिछुड़े को मिलाता हूँ (माधव से) माधव ! इधर आओ, सरला जैसी कुल कामिनी से हाथ मिलाओ !

[माधव आकर गौतम के चरणों के पास बैठ जाता है, गौतम सरला तथा माधव को उठा हाथ मिलाते हैं, दोनों शरमाते हैं]

गौतम—ऐ गृहस्थाश्रम के दो नवीन स्वच्छ फूलो ! जावो संसार सुख पुर्ण झूले पर झूलो।

सब—धन्य धन्य !

केशव०—कृपानिधि ! आपने जिस प्रकार आज मेरे सूने हृदय में आनन्द की वीणा बजाई है उसी प्रकार दास के जेत-वन बिहार को जो आप ही के निमित्त है बनाया अपने चरण कमलों से पवित्र बनाइयेगा —(देवदत्त से) और देवदत्त जी को भी साथ लाइयेगा।

देवदत्त—(केशव से) महानुभाव ! तुम्हारी उदारता को धन्य है जो इस तुच्छ जीव को जिसने तुम्हारे पुण्य जीवन-पथ में काँटों की झाड़ियाँ लगा दी थीं, तुम्हारे भविष्य हर्ष की सरिता सुखा दी थी। परन्तु आज तुम उसे प्रेम से बुलाते हो; ऐसे ऊँचे पद पर बिठाते हो। देवदत्त तुमसे क्षमा का प्रार्थी है।

केशव--भाई! उसमें तुम्हारा कुछ दोष न था, कुछ ताल मेल न था। वो तो एक प्रारब्ध का खेल था। अब उन बातों को ध्यान में न लाइये, ऐसे मङ्गल समय में हृदय को दुःखित न बनाइये।

चन्न—आज कपिलवस्तु की रज पवित्र हो गई। असित ऋषि की भविष्यवाणी सत्य हो गई।

गौतम—पिता! माता; भगिनी भ्राता! आओ, उस जगत् पिता को शीश नवायें। जिसने सबकी आशा को पूर्ण किया; हमें मनो-वांच्छित फल दिया।

देवदत्त—सन्तों! संसार स्नेही की जयजयकार बोलो!

सब—ओंम् बुद्धशरणम्!

(सब शीश नवाते हैं पीछे का पर्दा हट कर जगन्नाथ क्षेत्र नजर आता है)

हरे मुरारे मधुकैट भारे, गोपाल गोविन्द मुकुन्द सौरे।
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष॥
ओम्! शांति! शांति! शांति!!!!

सम्पूर्णम्

शुद्धिपत्र ।

पृ० सं०	शुद्ध	अशुद्ध
८१	अजी	अभी
८३	महानाम	महाराज
८५	ज्ञान	ज्ञात
८७	लो	जो
८८	नटन	मगन
८८	कन्याओं	कन्या लो

८६ कदी आवे ढोलन तै बिना, मेरी गुजरी रैन अजाबदी ।
दिलबर मेरा किवें बोले, हवा बिरयों दिजी में जोले । जल
भुन के जान होइयां कोले, जी में भुंज दी सीख कवाब दी ।

पृ० सं०	शुद्ध	अशुद्ध
६२	जंगल	जंल
६२	समय	रुपये
६३	भग्गा खयमज्झगा	भागा खपमज्झगा
१०४	भाता	लखाता
१०६	अत्रिय का	त्रत्रिय का
११२	पदपर्शन	पदर्शन

हिन्दी में सचित्र थियेट्रिकल नाटक

महाभारत	॥)	सीता बनवास	॥।)
भक्तसूरदास	॥)	तुलसीदास (छप रहा है)	
सत्यहरिश्चन्द्र	॥)	परशुराम ,,	
श्रीरामलीला	॥=)	भक्तसुदामा ,,	
विल्वमंगल	॥)	कर्मवीर ,,	
गोपीचन्द	॥)	भारतवर्ष ,,	
मीराबाई	॥=)	दानी कर्ण	॥=)
भीष्मप्रतिज्ञा	॥।)	(तैयार हो रहे हैं)	
सती अनुसूया	॥=)	पतिभक्ति	
महात्मा कबीर	१)	शंकराचार्य्य	
विश्वामित्र	॥।)	राधा माधव	
गौतमबुद्ध	१)	सम्राट दक्ष	
कृष्णलीला	१)	सतीप्रताप	
रामायण	॥।)	भक्त अजामिल	
पत्नीव्रत	॥।)	सुभद्राहरण	
नल दमयन्ती	१)	हिन्दू स्त्री	
सावित्री सत्यवान	॥।)	स्वर्ग नरक	
द्रौपदी स्वयम्बर	॥।)	चन्द्रगुप्त	
भक्तप्रहलाद	॥।)	ध्रुव चरित्र	
बालकृष्ण	॥=)	धर्म की देवी	
संग्रामसिंह	॥।)	शकुन्तला	
गंगावतरण	॥=)	शुक्राचार्य्य	
कलियुगागमन	=)	विक्रमचरित्र	॥=)

भारतवर्ष

यह नाटक नहीं, वरन भारतवर्ष के मुर्दा दिलों में नवीन जीवन का संचार करनेवाला; भारतसुधार के मार्ग को सुदृढ़ बनानेवाला, हिन्दू मुसलमान दोनों भाइयों के दिल में प्रेम और ऐक्यता का बीज बोने वाला एक सजीव संजीवनी बूटी है, धर्म की आलोचना; भारत की आर्थिकदशा का अपूर्व दर्शन परस्पर का प्रेमसम्मिलन, हिन्दू मुसल्मान का प्रेमाकर्षण तथा समयोपयोगी बातों का शिक्षाप्रद उद्घाटन इस नाटक में बड़ेही अच्छे ढंग से नजर आयगा। कविता की गंभीरता, भाव की मार्मिकता पर चित्त एक बारगीही मुग्ध हो जायगा, देखते ही तबीयत फड़क उठेगी, दिल में देशसेवायोगधारण और भारत के दुख निवारण का जोश लहरा उठेगा। साथ ही मनोहर कवितायें, सुन्दर गायनों और सीन सिनरियों से सजने के कारण इसकी मनोहरता और उपयोगिता का आसन और भी ऊंचा होगया है। अस्तु, अनुरोध है कि इसे एकबार अवश्य देखिए और भारतवर्ष के गौरव को बढ़ाने में यथेष्ट मन दीजिए। सुन्दर छपाई और चित्रों सहित मूल्य ॥।)

पता—उपन्यास बहार आफिस, काशी बनारस।

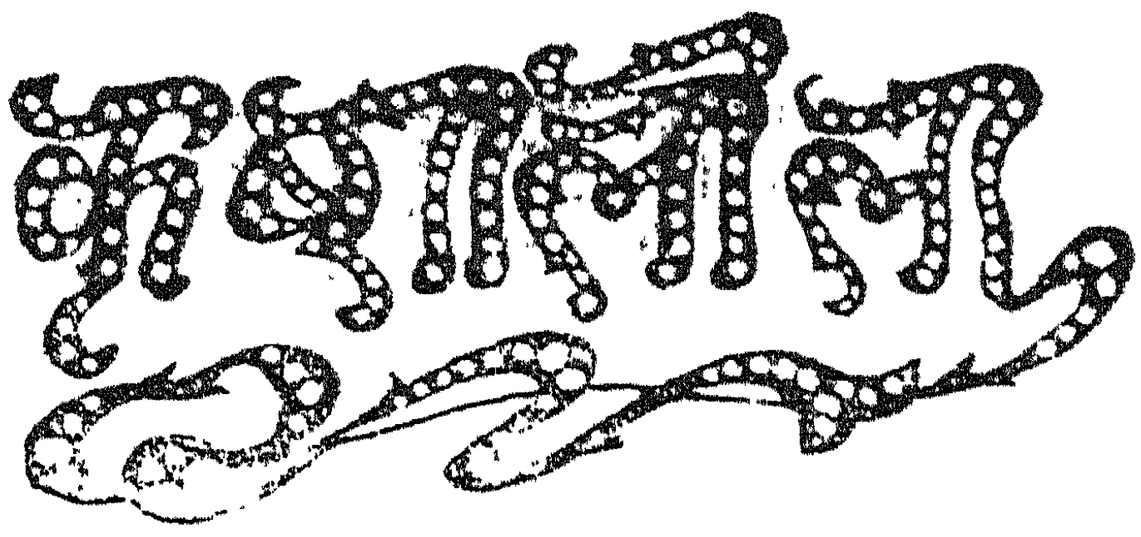

कृष्णलीला

प्रिय पाठक ! यह वही नाटक है जिसे बम्बई की मशहूर किर्लोस्कर संगीत नाटक मंडली ने बड़ेही धूम और सजधज के साथ खेलकर जनता को मुग्ध कर लिया था। यह नाटक नहीं वरन भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की रहस्यमयी लीलाओं का एक अपूर्व धार्मिक रहस्य उद्घाटन है। कविने कविता और मुग्ध दृश्यावली, भाव की गंभीरता द्वारा इस बात को बड़ेही अच्छे ढंग से प्रमाणित कर दिखाया है कि श्रीकृष्णचन्द्र का गोपियों के प्रति पवित्र प्रेम था-अश्लीलप्रेम नहीं, राधा वा अन्य सखियों ने जो कुछ भी प्रेम का अपूर्व भाव श्रीकृष्ण के प्रति दिखाया है वह सब ईश्वरभक्ति तथा प्रेम की उच्च महिमा है वे श्रीकृष्णचन्द्र को ईश्वर का अवतार जानकर ही पूजन करती थीं। इसीको श्रीकृष्ण द्वारा राधा के पिता गोवर्द्धन का विलक्षण रूप से शंका निवारण, राधा का पवित्रप्रेम संभाषण, और उनकी लीला का उद्देश्य साधन आदि बड़ेही मनोहर हैं, जिसकी उपयोगिता को हिन्दी केशरी बनारस ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसाकी है। अंटिक कागज पर सुन्दर छपाई और अनेक चित्रों से सुसज्जित मूल्य १)

पता—उपन्यास बहार आफ़िस, काशी बनारस।